TEXT CROSS WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY

OU_178927

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83·1 L19K   Accession No. P. G. H463

Author काक, गौरी शंकर 'अख्तर'.

Title कसौटी. 1943.

This book should be returned on or before the date last marked below.

क सौ टी

—:o:—

लेखक
मुंशी गौरीशंकर लाल, 'अख़्तर'

: : इलाहाबाद : :
दी यूनिवरसल पब्लिशिङ्ग हाउस

प्रकाशक
यूनिवरसल पब्लिशिङ्ग हाउस

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य
सवा रुपया

प्रथम बार सन् १९४३

विषय-क्रम

		पृष्ठ
१—मृगतृष्णा	... ...	१
२—नारी का स्थान	... ...	२१
३—पाषाण-रेखा	... ...	२६
४—ममता	... ...	४६
५—तरु-तीर्थ	... ...	६६
६—भूल	... ...	६५
७—अग्नि-शिखा	... ...	११५

परिचय

'कहानी' शब्द में कुछ ऐसी मिठास, कुछ ऐसी मादकता है जो मन को बरबस अपनी ओर खींच लेती है, शायद इसीलिये युग युग से मानव-जीवन में कहानी का समावेश होता चला आ रहा है। सच्ची कहानी वही है जिसमें मानव-जीवन की कहानी निहित हो; और साहित्य भी समष्टि रूप से मानव समाज के उत्थान-पतन, विजय-पराजय, हर्ष-विषाद की कहानी ही तो है? सम्भवतः इसीलिये संसार के सभी देशों में कथा-साहित्य को बहुत अधिक लोक-प्रियता प्राप्त हुई है। अतः यह स्पष्ट है कि मानव-समाज में कहानी का सदा से महत्व रहा है और अन्त तक बना भी रहेगा।

कहानी का उद्देश्य केवल मनोरञ्जन ही है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। मनोरञ्जन के साथ-साथ इसमें हमें वह चीज़ भी मिलनी चाहिये जो हमारी आत्मा का भोजन है—जो हमें मानसिक शुचिता प्रदान

करती है। इसलिये यह कला-कृति हमारे लिये जितनी ही प्रिय वस्तु है इसका सृजन अथवा निर्माण उतना ही कठिन भी है। जो कहानियाँ मानव-जीवन का दिग्दर्शन नहीं करातीं, जो हमारे अन्तस्तल का स्पर्श करने में सर्वथा असमर्थ हैं, उन्हें कहानी की संज्ञा नहीं दी जा सकती और न हमारे लिये उनकी कोई विशेष उपयोगिता ही हो सकती है। अस्तु—

'कसौटी' की कहानियाँ कहानी-कला की कसौटी पर कितनी खरी उतरती हैं, इसके सम्बन्ध में हम कुछ नहीं कह सकते; किन्तु इतना तो हम कह ही सकते हैं कि इसकी प्रत्येक कहानी पाठक के हृदय पर अपनी छाप अंकित कर देने वाली है।

'कसौटी' के कलाकार मुंशी गौरीशंकर लाल, 'अख़्तर', से उर्दू-साहित्य के रसिक तो अच्छी तरह परिचित हो चुके हैं, किन्तु इस पुस्तक के प्रकाशन के द्वारा हमें हिन्दी-प्रेमियों से उनका परिचय कराने का यह पहला अवसर प्राप्त हुआ है। 'मुंशी जी' की कहानियों में कुछ ऐसी सादगी, कुछ ऐसी सजीवता और आकर्षण है, जो हृदय को प्रभावित किये बिना नहीं रहते; उनकी कहानी-कला का यही एक सबसे बड़ी विशेषता है और इसी के बल पर हम यह कह सकते हैं कि मुंशी जी की कहानियाँ हिन्दी-प्रेमियों में भी उतनी ही लोकप्रियता प्राप्त करेंगी जितनी कि वे उर्दू-प्रेमियों के बीच प्राप्त कर चुकी हैं। इसी आशा और विश्वास के साथ इस कहानी-संग्रह को हम हिन्दी-प्रेमियों के सामने प्रस्तुत करते हैं।

—प्रकाशक

मृगतृष्णा

स प्रकार बादलों से घिरे हुए चन्द्रमा की फीकी ज्योति फूलों में एक उदासीनता का रंग भर देती है उसी प्रकार जीवन की निरन्तर असफलता तथा विवशता ने पाटन के यौवन तथा सौन्दर्य को आनन्द रहित और फीका बना दिया था। उसमें सौन्दर्य तथा लावण्य था किन्तु किसी विकल हृदय के लिये संतोषप्रद उन्माद नहीं था। उसका जीवन उस फल के समान था जिसमें रूप रंग तो अवश्य होता है, किन्तु तरोताज़गी नाममात्र को भी नहीं होती! आह वह बचपन से ही विधवा थी।

उसका विवाह उस समय हुआ था जब वह संसार के भले बुरे से अपरिचित थी, विवाह किसे कहते हैं वह यह भी नहीं जानती थी ! होश संभालने पर उसे केवल इतना ज्ञात हुआ कि उसके छोटे से संसार में एक छोटा भाई, माँ, और कुछ अस्बाब है ! सवेरे उठकर जब उसकी माँ पड़ोस में काम काज करने जाती तो वह अपने छोटे भाई को गोद में लेकर प्रभात काल के कमल की भाँति अर्ध विकसित पुष्प के रूप में पीठ पर काकुलों की लट बिखराये हुए छाया की भांति साथ-साथ रहती ! किसी घर से दो बासी रोटियाँ या कहीं से जो मुट्ठी भर चने हाँथ आते, उन्हें परमात्मा की असीम कृपा का फल समझ कर संतोष कर लेती थी।

किन्तु प्राकृतिक सौन्दर्य संसार में वह अद्वितीय तथा अमूल्य वस्तु है जो किसी पर निर्भर नहीं न किसी की कृतज्ञ है। कटीले बनों में भी सुगन्धित पुष्प अपनी मृदुगन्ध से सृष्टि को मनोहारिणी बनाये रहते हैं ! परदेश की विवशता; लाचारी तथा दीन दशा में भी प्रकृति अपने कर्तव्य परायणता को नहीं भूलती। कीचड़ के कमल सदृश दीन की अँधेरी कुटिया को प्रकाशित करके यौवन की रंगरेलियाँ तथा आकर्षण उसके निःशब्द शरीर में इस प्रकार प्रदर्शित हुए जैसे आइने में प्रतिबिम्ब ; उसके नखशिख में चित्रकार की तूलिका से भी कहीं अधिक श्रेष्ठता और भावुकता उत्पन्न हो गई थी।

पाटन की माँ के अनुभवी नेत्र यह प्रलयकारी एवं उत्पात-जनक दृश्य देख रहे थे, और वह भली प्रकार जानती थी कि यौवन के

आवेगपूर्ण भावों से प्रेरित हो भोला-भाला हृदय असफल उमंगों की ओर बे रोक भागता है, किन्तु उसका परिणाम करुणाजनक एवं हृदयविदारक होता है। जिस प्रकार सर्प अपनी मणि को बड़ी सावधानी से सुरक्षित रखता है, उसी प्रकार पाटन की माता अपने इस प्रतिष्ठा के अमूल्य रत्न को संसार की क्रूर दृष्टि से छिपाये रखने की यथा-शक्ति चेष्टा करती रहती थी।

किन्तु यह सावधानी सदा कार्य परिणत नहीं हो सकती थी। माता तथा पुत्री दोनों को ही उदराग्नि की शान्ति तथा जीवन की आवश्यकताओं से विवश हो उनकी पूर्ति के लिये दर-दर भटकना पड़ता था। जब पाटन को हजारों चुभती हुई निगाहों से सुरक्षित रहना असम्भव सा हो गया, तो माँ-बेटी दोनों ने एक नया उपाय सोचा।

ग्राम में लक्ष्मी शंकर एक धनाढ्य व्यक्ति थे, जो इन लोगों के सहायक एवं हितैषी भी थे। पाटन के पिता उनका बड़ा मान करते थे। जब पञ्चवर्षीय पाटन का विवाह हुआ था उस समय इन्होंने गाँवों वालों के विरोध करने पर भी इन लोगों की बड़ी सहायता की थी, अपने विपत्ति काल में पाटन की माता जब कभी भी उनके द्वार पर गई उसे निराश और खाली हाथ नहीं लौटना पड़ा था।

एक दिन पाटन की माता ने लक्ष्मी शंकर के यहां जाकर अपनी दीनावस्था की चर्चा की। उसकी इच्छा थी कि वह अपनी पुत्री को उनके यहाँ छोड़ दे और स्वयं अपने भाई के यहाँ जाकर अपने छोटे पुत्र को पढ़ा लिखा कर चार पैसे कमाने योग्य बना दे। लक्ष्मी शंकर

तथा उनकी स्त्री दोनों सहमत हो गये। बेचारी विधवा के सिर से भारी बोझ उतर गया उसने पाटन को सब ऊँच नीच-समझा कर एक दिन सायंकाल झुटपुटे में लक्ष्मी शंकर के यहाँ पहुँचा आई।

प्रातःकाल ग्राम के अदूरदर्शी युवकों ने खिन्न होकर देखा कि चिड़िया उड़ गई और पाटन की माँ की दयनीय कुटिया उजड़ी पड़ी है।

२

लक्ष्मी शंकर का एक मात्र पुत्र हरिशंकर हिन्दू कालेज बनारस में पढ़ता था। शनिवार को संध्या समय घर आता और सोमवार को सुबह बनारस लौट जाता था। हरिशंकर का भी एक पुत्र था। मुश्किल से आयु सवा वर्ष की रही होगी। उसका नाम था मायाशंकर।

हरिशकर के एक बहन भी थी। उसका नाम था कमला। उसकी आयु भी पाटन के बराबर थी। विवाह हुये दो वर्ष हो चुके थे। वह मायके में ही रहती थी। कमला का पति देहली में नौकर था। वर्ष दो वर्ष में एक बार ससुराल आता था। घर में एक नौकर तथा एक दासी के अतिरिक्त अधिक प्राणी नहीं थे।

यहाँ पाटन को किसी प्रकार का कष्ट नहीं था तथा बहू और कमला दोनों उसके समवयस्क होने के नाते उसके साथ सहानुभूति तथा स्नेह भाव रखती थीं। अपने सद्व्यवहार, मनोहरता, परिश्रम तथा मधुर भाषण से पाटन ने प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थान कर लिया था। दैनिक आवश्यक पात्रों की भांति पाटन भी उन सब में घुल मिल गई थी।

पाटन के बिना उनका एक पल भी दूभर हो जाता। पाटन को यहाँ रहते अभी अधिक समय व्यतीत नहीं हुआ था कि लक्ष्मीशंकर का देहान्त हो गया था। हरिशंकर ग्राम तज कर सभी के साथ बनारस ही रहने लगा। पाटन चूँकि उन्हीं लोगों की आश्रित थी, वह भी साथ गई। हर समय साथ रहने से जब तीनों सहेलियों में मेलमिलाप अधिकता से बढ़ गया तब नन्द भाभी दोनों ने विस्मित हो देखा कि पाटन एक सुसज्जित कठपुतली के सदृश है। उसके समस्त शरीर में वर्षा ऋतु की आवेगपूर्णाकूल-परित्यक्ता गंगा के विकराल प्रवाह का परिवर्तन शील दृश्य है किन्तु हृदय की गति नवागत ग्रीष्म ऋतु के सरिता के समान शुष्क है। इन दोनों ने भिन्न भिन्न सरस बातों तथा उपायों से उस म्लान निकुञ्ज को हरा-भरा करने की चेष्टा की। क्योंकि दो सरस हृदयों के बीच एक नीरस हृदय की निष्प्रभा दृष्टि वास्तविक मनोरंजन को नीरस बना देती है। नन्द भाभी की निरन्तर चेष्टाओं से सफलता के चिन्ह तो अवश्य दृष्टिगोचर हुये किन्तु सजधज का यह समावेश तथा यौवन की यह चञ्चलता सिकता के मुकुर-व्यूह से प्रस्फुटित हो कर यौवन के उन्मुक्त तथा हीन बन जाने का भय प्रगट करती थीं। कदाचित पाटन को स्वयं यही भय था कि कहीं उसके उन्मत्त नेत्र नियति के मनोहारी दृश्य के उन्माद को परिवर्तित न कर दें।

३

नन्द भावज दोनों को घर गृहस्थी का कुछ अधिक कार्य न था। वह

रातदिन पाटन के साथ रस पूर्ण वार्तालाप करती रहतीं और इस प्रकार वह कुछ अपने उद्देश्य में सफल हो गईं। जिस प्रकार मलय पवन के उन्मत्त झोकों से नवमुकुलित पुष्प सिहर उठता है ठीक उसी प्रकार पाटन ने अपने हृदय में एक उन्मादपूर्ण संगीत के कम्पन का अनुभव किया। उसे चन्द्रमा की उन्मुक्त ज्योत्स्ना तथा मलय समीर के उन्मत्त झोंकों की मादकता से आह्लादित होते भी देर न लगी। तब पाटन अपने उन्मत्त संगीत, स्वप्न, कम्पन, तथा खुमार से चौंकी।

किन्तु हृदय की जागृतिके साथ साथ पाटन का हार्दिक सन्तोष भी उससे विमुख हो गया। उसने अपने में कुछ ऐसी कमी का अनुभव किया कि उसे ठण्डी आहें भरने की नौबत आ गई। जो अधर अब तक इस पीड़ा से अनभिज्ञ थे वे उसमें अग्रसर और विलीन दिखाई देने लगे। इतने दिनों तक वह निश्चिन्तता से अपने समस्त कर्तव्यों का पालन करती आ रही थी पान बनाती और निःसंकोच हरिशंकर को दे आती। रात्रि को वह जब घूम फिर कर आता तो दरवाजा खोलती। किसी कार्य में लज्जा तथा कष्ट का अनुभव न करती। उस समय उसकी प्रत्येक चाल से मादकता तथा चंचलता दृष्टिगोचर होती थी। विशेष रूप से हरिशंकर के समक्ष जाते हुये उसे किसी ऐसे उल्लास का अनुभव होता जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। लेकिन अब उसका वह साहस जाता रहा। चुपचाप दबे पांव जाकर वह पान की डिबिया रख कर उल्टे पैर लौट आती। यदि संयोग से कभी हरिशंकर से साक्षात हो जाता तो झिझक कर अपने आपको समेट लेती थी।

एक दिन की बात है कि बहुत दिनों के उपरान्त कमला का पति उससे मिलने आया। कमला स्वभावतः बड़ी सुशील और सुघर थी सर्वदा नवविकसित पुष्पों की भांति स्वच्छ रहती। उस दिन जब वह और भी सुसज्जित होकर अपने शयनागार में गई तो पाटन किसी प्रकार अपना हृदय वश में न रख सकी।

जैसे तीर हिरनी के वक्षस्थल में चुभ जाता है, उसी प्रकार कमला के यह रसीले और मद-भरे नैन-बाण उसके कलेजे में चुभ गये। हृदय में अभिलाषाओं तथा कामनाओं का नश्तर लगा, किसी प्रकार स्वयं को वश में न रख सकी। एक प्रेममय प्रेरणा से उसके पाँव खट-खट कमला के शयनगृह की ओर उठते चले गये! द्वार के पास निस्तब्ध हो कर इन लोभनीय दृश्यों को देर तक हताशपूर्ण नेत्रों से देखती रही फिर दीर्घ निश्वास भर कर उठी और अपने सोने के कमरे में चली गई।

उस रात्रि को पाटन के नेत्रों से निद्रा हरण हो गई। किसी अविदित क्लेश ने मानो उसके शोक-पूर्ण बिछावन पर कंटक बिछा दिये थे। वह बार बार करवट बदलती किन्तु विकलता बढ़ती ही जाती थी। उसने समस्त रात्रि आँखों में काटी।

दूसरे दिन प्रातःकाल उसने अपने सारे कर्तव्यों का बड़े सुन्दरता से पालन किया। किसी से कोई बातचीत न की और पहले की भांति मिली जुली। अपने हृदय के भावों पर मरहम रख कर मायाशंकर को

खिलाती रही। नन्द भावज दोनों ने उसके इस विचित्र परिवर्तन को देख कर सोचा कि कदाचित उसकी तबियत कुछ खराब है।

मायाशंकर बड़ा चंचल बालक था। वह सब को अपनी नित नई शरारतों से तंग करता, मारता, पीटता, और फिर स्वयं रोने लगता। केवल पाटन ही के पास पहुँचते उसके स्वभाव में परिवर्तन हो जाता। नामालूम पाटन ने उसे कौनसी घुटी पिला दी थी, वह उसी की आज्ञानुसार काम करता था। धीरे-धीरे पाटन अपनी आन्तरिक विवशता और वेदना का ज्यों-ज्यों अनुभव करने लगी त्यों-त्यों वह बालक से घनिष्ठ से घनिष्ठतर होने लगी। अन्त में यह नौबत पहुँची कि इस नग्न शरीर छोटे से हृदय ने पाटन के घाव पूर्ण हृदय पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त कर ली। मायाशंकर ने सब के पास जाना तज दिया। आठों पहर पाटन बुआ के पास रहने लगा। घर की स्त्रियों ने विवश होकर यह समस्त भार पाटन के ऊपर डाल दिया।

पाटन के हार्दिक विचारों के परिवर्तन के साथ-साथ उसके स्वभाव में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। नन्द व भाभी के साथ वह भी साँझ को नित्य हाथ मुँह धोती, साबुन इत्यादि मलती, ललाट पर बिन्दी लगाती तथा नित्य नये भाव से कंघी-चोटी करती। और जब लाल किनारी की महीन अंगूरी रंग की साड़ी पहनती तो उस समय उसके भाव एवं हृदयहारी सौन्दर्य को दोनों सहेलियाँ द्वेष पूर्ण दृष्टि से देखतीं और पाटन के हृदय में ऐसी अनन्त ज्वाला प्रज्वलित हो उठती जिसकी गर्मी स्वयं उसके लिये असहनीय हो रही थी। वह सोचती

थी कि काशी में धर्म लूटने आई थी, किन्तु भय है कि कहीं घर ही न लुटा बैठें।

एक दिन हँसी-हँसी में भाभी जी ने कहा—"पाटन बीबी कहीं रात्रि के समय इस तरह सुसज्जित हो कर दादा के लिये द्वार खोलने न जाना।"

एकाएक पाटन का सारा शरीर काँप उठा! मुस्कराते हुये बोली—"छी"।

किन्तु भाभी जी के इस परिहास को सत्यता में परिवर्तित होते अधिक विलम्ब न लगा। अकस्मात जब एक दिन पाटन साधारणतः द्वार खोलने गई तो हरिशंकर का हृदय उसके सौंदर्य की प्राकृतिक छटा एवं आकर्षण की ओर खिंच गया। उसके हृदय में एक प्रसन्नताजनक गुदगुदी हुई। उसने पाटन की ओर लालायति नेत्रों से देखा। पाटन के अधरों पर कविता भरी मुस्कान प्रगट हुई, वह भाग गई; हरिशंकर भी अपने कमरे में चला गया।

हम लोग बाल शिक्षा प्रणाली से परिचित नहीं, केवल लिखना पढ़ना सिखाना ही हमारा उद्देश्य है! यदि लड़का लिख पढ़ गया तो हम संतुष्ट हो जाते हैं। किन्तु खराब बच्चों की अपेक्षा अच्छे लड़कों के बिगड़ने की सम्भावना अधिक रहती है इसे हम भूलकर भी नहीं सोचते इसी कारण हमारे घरों में इतनी अव्यवस्था, निर्धनता तथा असंतोष रहता है।

४

जैसे कच्ची शीशी ज़रा सी आँच सहन नहीं कर सकती उसी प्रकार बच्चे भी कामनाओं की लपक से झुलस जाते हैं। हरिशंकर की भी यही गति हुई। वह शिक्षित अवश्य था किन्तु। सदाचार तथा आत्म-पवित्रता से बिलकुल अनभिज्ञ था। आत्म-संयम का उसे ज्ञान तक न था। दीप पर जल मरने वाले अभिलाषी पतंग की भांति वह पाटन के सौन्दर्य में उलझ गया। भावनाओं के नष्टकारी प्रलोभन ने जीवन में प्रथम बार अपना कुरूप दिखाया।

एक रात जब पाटन दर्वाज़ा खोलने आई तो उसने भावों के आवेश में पाटन के दोनों हाथ पकड़ लिये और उन्मत्त स्वर में कहा—"पाटन क्या तुम मुझसे प्रेम नहीं करतीं?"

इस प्रश्न ने पाटन के वक्षस्थल में उथल-पुथल मचा दी। सारा शरीर पसीने से भीग गया। उसका रक्त रगों में शीघ्रता से दौड़ने लगा। वह क्षण भर सर झुकाये निस्तब्ध खड़ी रही। इसके उपरान्त बड़े लज्जापूर्ण भाव से बोली "छोड़ो! छोड़ो। कोई देख न ले" और यह कहते ही शीघ्रता से हाथ छुड़ा लिया। बांसुरी के मधुर गाने ने नाग को मस्त कर दिया, हरिशंकर मुग्ध होकर वहीं बैठ गया, किन्तु पाटन भाग गई।

कुछ देर के बाद एक दीर्घ निश्वास लेकर हरिशंकर ने उठकर द्वार बन्द किया और अपने शयनगृह में जाकर लेट रहा। पत्नी से बोला तक

नहीं, उसने बहुत कुछ गुदगुदाया किन्तु असफलता ने शक्ति-हीन कर रखा था। भोजन भी नहीं किया।

प्रातःकाल उठकर सब लोगों ने देखा पाटन का खाना भी योंही रखा हुआ है, उसी दिन से पाटन के स्वभाव तथा रहन-सहन में परिवर्तन हो गया। पाटन के न अनुभव करते हुए भी अन्य लोगों ने अनुभव किया। किन्तु अवस्था की माँग समझकर किसी ने उसे ध्यान न दिया। परन्तु उस रोज़ से हरिशंकर ने अपनी पत्नी से सीधे मुँह बात तक न की और यह भेद धीरे-धीरे सब पर प्रगट हो गया।

जहाँ आघात पहुँचता है वहीं पीड़ा होती है, माँ अपनी भूल स्वीकार करते हुए भी चुप रह गई, किन्तु पत्नी से रहा गया। वह चुपके चुपके पति की विमुखता तथा विरोध का पता लगाने लगी। पाटन का यह आकस्मिक परिवर्तन नन्द भाभी से छिपा न रहा। किन्तु पाटन की पकड़ इतनी सरल न थी।

जो इच्छाओं के दास होते हैं वह अपनी विवशता और दुर्बलता से शीघ्र पकड़ में आजाते हैं। हरिशंकर के साथ भी यही हुआ किन्तु पाटन सुरक्षित रही। उसके अन्तरंग में जो क्रांति उठी थी वह प्रकृति के परिवर्तन की भाँति अति विशाल तथा वैभवशाली थी; इसी कारण कोई उसकी तह तक न पहुँच सका।

५

शैशवकाल में पाटन जब गुड़ियों से खेलती थी उस समय वह

कुँवारी थी अब इस बात का उसे स्मरण भी न था। अवस्था की वृद्धि के साथ-साथ यौवन ने भी कमल की भाँति अपनी समस्त पंखड़ियाँ फैला कर कामदेव पर अर्पित होना चाहा, उस समय सर्व प्रथम हरिशंकर ही उसके सामने आ खड़ा हुआ। पाटन ने आत्मविभोर होकर उस देवता के चरणों पर स्वयं को इस प्रकार अर्पित कर दिया जैसे कोई उपासक अपने देवता के चरणों पर फूल चढ़ाता है।

एक दिन हरिशंकर ने खीझ कर कहा—"पाटन भला कब तक इस अग्नि को सीने में दबाये हुए जलता-भुनता रहूँगा। तुम बहुत कठोर हो"।

पाटन ने कहा—"छीः ऐसी बात न कहो तुम मेरे देवता हो तुम्हें देखती हूँ, तुम्हारी सेवा करती हूँ, मेरे लिए यही बड़े भाग्य की बात है, इसके अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं चाहती"।

"किन्तु मुझे इससे क्या ! मेरे अन्तरङ्ग में तो दिन-रात एक अग्नि सुलग रही है, इसको कहाँ तक सहन करूँ ? मेरी बात मान लो और चलो कोई घर किराये पर लेकर तुम्हें रानी की तरह रखूंगा, अब नहीं न करो"।

अन्त में रात्रि को दरवाज़ा खोलते हुए हरिशंकर ने बलपूर्वक पाटन को पकड़ लिया। सौन्दर्य के नशे में ·····इच्छाओं के वेग में उन्मत्त होकर उसने सोचा था कि आज कुछ निर्णय किये बिना न रहूँगा।

हरिशंकर के उन्मत्त भाव देख कर पाटन भयभीत होते हुए भी प्रत्यक्ष गम्भीर सी रही और अति दीन स्वर में हरिशंकर को समझाने

लगी, किन्तु वह कब समझने लगा था। परकार की भांति घूम फिर कर फिर उसी केन्द्र पर आ जाता। तब पाटन ने कहा—"नहीं यह मुझसे न हो सकेगा, प्राण रहते हुए मैं किसी प्रकार भी भाभी जी का अनिष्ट न कर सकूँगी।" हरिशंकर उसका हाथ पकड़कर और भी न जाने क्या कहना चाहता था, किन्तु पाटन ने धीरे-धीरे अपना हाथ छुड़ाकर अपने आपको मुक्त कर लिया। और कहा—"तुम मेरे देवता हो, सर्वदा तुम्हारी पूजा करूँगी, किन्तु तुम्हारे पाप-मार्ग की संगिनी न बनूँगी तुम्हें कलंकित न होने दूँगी; भाभी जी का सर्वनाश न देख सकूँगी; इस सोने की लंका में आग न लगाऊँगी।

६

उस रात पाटन की आँख क्षण-मात्र के लिए भी न लगी, केवल आँसुओं से तकिया तर करती रही। प्रातःकाल उसकी आँखें नींद से भर गईं। दूसरे दिन मायाशंकर के बार बार जगाने से जब उसकी आँख खुली उस समय दिन बहुत चढ़ चुका था।

जैसे क्षण भर के भूकम्प से सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में कुछ परिवर्तन हो जाता है उसी प्रकार पाटन के नेत्रों में संसार अस्त-व्यस्त दिखाई दिया। उसकी दृष्टि में रात भर में ही यह घर उलट-पलट हो गया था।

मायाशंकर की माँ नेत्रों से अग्नि-वर्षा करती हुई लड़के को पाटन की गोद से छीन ले गईं। पाटन से बात-चीत करना तो दूर रहा क्रोध और घृणा से मुँह फेर कर चलती बनीं।

आज से पहले जब आनन्दी काम करने आती थी तो सर्व प्रथम बहुत कुछ गप-शप करती थी किन्तु आज वह सीधे बर्तन लेकर नल पर पहुँची और मलने लगी। पाटन के वहाँ पहुँचते ही बोली—"इन बर्तनों को हाथ न लगाना अन्यथा मालकिन देखेंगी तो मुझ पर ही बरस पड़ेंगी।" तत्पश्चात् वह फिर बर्तन मलने लगी।

वहाँ से उठकर पाटन डरती-डरती रसोई-घर में गई। उस समय मालकिन स्वयं चौका लगा रही थीं; बोलीं—"बस बेटी जो होना था सो गया और अब अपना बोरिया-बिस्तर उठाओ। तुम्हारे भाई को बुलाने के लिए हरिशंकर को भेजा है तुम उसी के साथ चली जाना।"

पाटन ने विस्मित होकर पूछा—"माता जी! आप क्या कहती हैं मुझे कहाँ जाना होगा?"

मालकिन ने गरज कर कहा "नरक में!" मैं क्या जानूँ जहाँ तेरा भाई ले जाय वहाँ जाना होगा! मेरी कच्ची गृहस्थी है, ऐसी छूटी हुई छत्तीसी लड़कियों का निर्वाह मेरे घर में नहीं होगा।"

पाटन के सर पर आकाश फट पड़ा, नेत्रों के सामने अँधेरा छा गया। थर-थर कांपते हुए वहीं बैठ गई, वाक्य-शक्ति क्षीण हो गई, बोल न सकी, इस बार मालिकन ने आकाश सर पर उठा लिया बोलीं—"जाओ। जाओ बाहर निकलो; मैंने ऐसी अनेक छोकड़ियाँ देखी हैं, जिनके काटे का मन्त्र तक नहीं। तुम हवा में गांठ लगाती हो, सबेरे ही सबेरे क्यों रार मचाई है? कपड़े लत्ते सम्भालो और अपनी राह लो। आखिर छोटी जात की हो न। कुतिया को घी नहीं पचा। मेरे

हरिशंकर को तुमने कहीं मुँह दिखाने योग्य न रखा। यदि यही चलन थे तो किसी भलेमानुस का घर क्यों ताका? क्या बाज़ार में कोठों की कमी थी?"

पाटन निस्तब्ध थी—अवाक् थी, अब उसकी समझ में बात आई। उसके अधरों तक उत्तर आ चुका था किन्तु कुछ सोच कर चुप हो गई। वृद्ध तथा निर्बल रोगियों की भांति लड़खड़ाती हुई अपने कमरे में पहुँची, पग-पग पर सोचती जाती थी "काश! धरती फट जाती और मैं उसमें समा जाती।"

दोपहर के समय उसका भाई आकर उसे लिवा ले गया। जैसे नव-वधू प्रथम बार ससुराल जाते हुए रुदन करती है उसी प्रकार पाटन माया शंकर को प्रेम-पाश में लेने के लिए खूब रोई, किन्तु घर के किसी प्राणी ने ध्यान न दिया। उस समय हरिशंकर बाहर के द्वार बन्द किये हुए सोने की चेष्टा कर रहा था। हाय रे नराधम!

७

छः मास व्यतीत हो गये।

हरिशंकर के यहाँ पग-पग पर पाटन की अनुपस्थिति का अनुभव होता था तथापि उस दीन का नाम कोई भी न लेता था। हाँ, एक अबोध मायाशंकर था जो बार-बार पाटन बुआ को याद करता था। उसके निर्दोष हृदय में छः मास पूर्व जो प्रेम का अँकुर अँकुरित हुआ था वह अब पौदे का रूप धारण कर चुका था। उसके हृदय से पाटन की स्मृति विलीन न हुई थी।

बनारस से पश्चिम की ओर चेतगंज में एक छोटे से किराये के घर में पाटन का भाई रहता था और अपना परम्परागत व्यवसाय करता था। घर में बहन के अतिरिक्त और कोई अपना न था। माँ का पहले ही स्वर्गवास हो चुका था। अतः घर-गृहस्थी का सभी काम पाटन के सर पर पड़ा। पाटन की इच्छा थी कि दशा सुधरते ही भाई के विवाह का प्रबन्ध करूँगी।

इन छः मासों में पाटन की अवस्था में बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका था। उसके यौवन तथा लावण्य में उदासीनता की एक गहरी रेखा अंकित हो चुकी थी। छः मास उसके लिये छः वर्ष से भी अधिक नष्टकारी प्रमाणित हुए। घनघोर बादलों की भाँति अपने हार्दिक भार को अन्तरंग में दबाये वह भाई के घर का काम काज करती किन्तु अंतरङ्ग को सींचने के लिये भीतर ही भीतर जो सजल मेघ गरजते उनको किसी प्रकार प्रकट न होने देती केवल मायाशंकर की बातें याद आने पर स्वयं स्थिर न रह सकती। दर्द का बहाना करके कोठरी का द्वार बन्द कर लेती और फूट-फूट कर रोती।

इसी तरह भीतर ही भीतर कुढ़ते हुए पाटन को रोग हो गया और वह सूख कर कांटा हो गई। वह अपनी अन्तिम समय की प्रतीक्षा करने लगी किन्तु भाई पर किसी प्रकार भी कोई भेद न प्रकट होने दिया।

उसी वर्ष जब भयंकर सर्दी पड़ रही थी तब पाटन ने बिस्तर का आश्रय ग्रहण किया। उठने-बैठने की भी शक्ति न रही। भाई दवा-दारु की चिन्ता करता तो उसे मना करती और कहती—'शरद-ऋतु' बीत

आने पर सब रोग स्वयं जाता रहेगा किन्तु वह इस भांति शैय्या ग्रस्त हुई कि फिर उठने का साहस न हुआ। कई दिनों के लगातार कठिन शीत से पाटन का दुःख बहुत अधिक हो गया। मुँह से रक्त आने लगा जोड़ जोड़ दुखने लगा मुख की आकृति में एक दम परिवर्तन हो गया। पाटन समझ गई कि अब समय निकट आ गया है। इतने दिनों तक जैसे तैसे उसने अपने भाई से अपने क्लेश की बात छिपाये रखी भूले से भी कभी होठों पर न लाई, अब उसकी रही सही शक्ति भी क्षीण हो गई। उस दिन रात के अन्तिम भाग में श्वांस पीड़ा का भी आरम्भ हो गया।

यह सब देख कर बेचारा भाई कलेजा थाम कर रह गया। समझ गया बहन का अन्तिम समय आ गया है, दुखित हो रोते रोते बोला—"दीदी केवल रोग के छिपाये रखने के कारण तुम इस दशा को पहुँची हो अब मैं क्या करूँ। हाय! तुम्हारे सिवा मेरा कौन है अब मैं किसका मुँह देखकर जीऊँगा।"

पाटन ने बड़ी कठिनता से अपने दोनों हाथ उठाकर वक्षस्थल पर रखे तत्पश्चात् भाई को और भी निकट आने का संकेत किया, उसके समीप आने पर धीरे से पाटन ने जाने क्या कहा कि एकाएक उसके मुख की आकृति बदल गई। क्रोध और झुँझलाहट के चिह्न प्रगट हो गये, किन्तु अन्तिम यात्रा में पदग्रस्त बहन की मुख की ओर देखकर अपने क्रोध को पी गया। एक दीर्घ निश्वास लेकर घर से बाहर चला गया, बहुत देर बाद जब वह लौटा तो बहन की गोद में माथा धरकर पाटन

बुआ पाटन बुआ पुकारता हुआ अपनी व्यग्रता का प्रदर्शन कर रहा था।

कमरे में पहुँचते ही मायाशंकर अकस्मात् चुप हो गया। आश्चर्य चकित हो वह चारों ओर देखने लगा और विशेषतः पाटन के नेत्रों से नेत्र मिलते ही वह गोद से उतरने के लिए कसमसाने लगा। उतरते ही प्रेम के आवेग में उस वक्षस्थल से लिपट गया जो उसका प्रेम बसेरा था।

पाटन के भाई ने कहा—"मायाशंकर बाहर ड्योढ़ी में एकान्त बैठा खेल रहा था तुम्हारा नाम सुनते ही दौड़ कर मेरी गोद में आ गया मैंने किसी से केवल इसलिए नहीं कहा कि कदाचित कोई इसके यहाँ लाने पर आपत्ति न करे।

सायंकाल से पूर्व ही पाटन का भाई मायाशंकर को उसके घर पहुँचाने के लिए लेने आया किन्तु बालक पाटन से लिपट गया और किसी प्रकार भी जाने को तैय्यार न हुआ। पाटन ने बहुत समझाया किन्तु उसने एक न मानी बल्कि और जोर से लिपट गया। विवश होकर पाटन ने भाई से कहा कि तुम घर में जाकर कह आओ कि मायाशंकर जिस समय सो जायेगा उस समय उसे पहुँचा दिया जायगा।" मैं कभी न सोऊँगा, न जाऊँगा न जाऊँगा। यह कह कर निर्दोष मुसकान से हँसते हुए बालक ने एक तमाचा मारा। मृत्यु के अंधकार में विलीन पाटन का शुष्क मुखड़ा उस स्वर्गीय आनन्द से दीप्तमान हो उठा। सायंकाल के उपरान्त पाटन की दशा धीरे धीरे अधिक शोचनीय होने

लगी। घर में कोई अन्य व्यक्ति न था। बेचारे भाई ने सम्बन्धियों तथा कुटुम्बियों के पास दौड़-धूप आरम्भ की। इस विपत्ति में न वह हरिशंकर के यहाँ स्वयं पहुँच सका और न सुत मायाशंकर को घर पहुँचा सका।

८

इधर हरिशंकर के घर में हाहाकार मच गया। लड़का चोरी गया, पाँव में कड़े पहने था। कहीं पता नहीं चलता। हरिशंकर ने बहुत खोज की किन्तु जब दो बजे रात्रि तक भी कोई पता न चला तो अन्त में उन्होंने थाने में रिपोर्ट कर दी।

प्रातःकाल होने से पहले ही फिर चारों ओर आदमी दौड़ाये गये एक व्यक्ति ने सूचना दी कि किसी ने कल दो बजे के समय चेतगंज में एक बालक को गोपाल नामी मनुष्य की गोद में देखा था।

हरिशंकर चकित रहगया। कैसे विस्मय की बात है। उसका ध्यान एक बार भी उसकी ओर नहीं गया। निसन्देह यह पाटन और उसके भाई की करतूत है। क्रोध से उसका समस्त शरीर काँप उठा, हाथ की मुट्ठियाँ बंध गईं। दाँत पीसते-पीसते वह थाने की ओर चला।

प्रातःकाल के समय पाटन की दशा कुछ सुधर गयी थी। करवट बदलते हुए मायाशंकर उसकी गोद से लिपटा हुआ सो रहा था। पाटन उसके निद्रित मुखड़े पर एकाग्रता से दृष्टि जमाये स्वर्गीय आनन्द का अनुभव कर रही थी किन्तु आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। और वह किसी प्रकार भी न थमते थे।

इतने में उसकी दशा विपरीत होने लगी और वह चीख उठी। उसका भाई निकट ही बैठा हुआ ऊँघ रहा था बहन का चीत्कार सुनकर चौंक उठा। पाटन ने संकेत किया। गोद में उठाते ही बालक जाग उठा, और चिल्ला कर रोने लगा। उस समय पाटन का श्वांस चल रहा था वह कुछ कह न सकी केवल अश्रुपूर्ण नेत्र से बालक को अपलक दृष्टि जमाए रही। अकस्मात् बाहर कोलाहल सुनाई दिया और दरवाज़े पर धक्के भी लगे। रोते हुए बालक को गोद में लिए हुए पाटन का भाई किवाड़ खोलने गया और उलटे पैर दौड़ी दौड़ी चिल्लाता हुआ वह लौट आया।

पाटन ने इस बार बड़े कष्ट से अधखुले नेत्रों से देखा। अनेक ही सिपाही उसके भाई को बन्दी करने की चेष्टा कर रहे थे और सब के पीछे लाल लाल नेत्र निकाले हरि-शंकर आज्ञा दे रहे थे।

उस समय पाटन को वाक् शक्ति जाती रही थी, केवल रह रह कर उलटा साँस चल रहा था। एक बार अन्तिम चेष्टा से हरिशंकर की मुख की ओर देखकर . . . .उसने नेत्र बन्द कर लिए अन्तिम श्वांस के साथ रुग्ध कण्ठ से केवल मा ———य ——का शब्द सुनाई दिया कौन जाने क्यों उस समय हरिशंकर के भी नेत्र सजल हो गये। मायाशंकर और सिपाहियों को लेकर बाहर निकल गया। हाय रे मृगतृष्णा।

नारी का स्थान

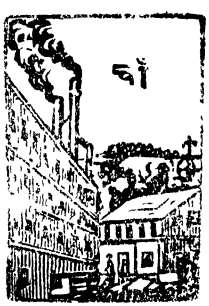

दनी रात थी। चारों ओर सुओज्वल प्रकाश तरंगित हो रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कमल की श्वेत पंखड़ियाँ अपने सौंदर्य की छटा बिखेर रही हैं। कदम के वृक्षों पर चन्द्रमा की शान्तिदायक किरणें कुन्दन की भांति दीप्तमान थी।

भगवान मन ही मन सोच रहे थे कि मानव जाति मृत्यु लोक में अति ही सुन्दर प्राणी है, किन्तु यह कमल का फूल जो समीर के मद मस्त झोंको से झूम रहा है, संसार के

समस्त प्राणियों से कहीं अधिक सुन्दर है। इसकी पंखुड़ियाँ अपनी प्राकृतिक छटा में पूर्ण सौंदर्य की प्रतिमा बनी हुई विकसित हो रही हैं। इनमें इतना अधिक आकर्षण, और मन मोहकता है कि दृष्टि फेरने को जी नहीं चाहता। लेकिन मनुष्य में है ही क्या। केवल पाँच तत्वों का समुदाय ही तो है?

भगवान के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि अब किसी ऐसे सुन्दर जीव का निर्माण करना चाहिये जो समस्त मानव-जाति में उतना ही आकर्षक, हृदयहारी तथा प्रिय हो जितना फूलों में कमल। वह इतनी सर्वाङ्ग पूर्ण मूर्ति हो कि उसमें संतोष और धैर्य की शक्ति हो। ऐसा प्रकाश हो कि समस्त सृष्टि ज्योतिमय हो जाय। यह विचार आते ही उन्होंने कहा, "ऐ मनोहर कमल! तू एक जीती-जागती कुमारी की मूर्ति में परिवर्तित हो जा और अपनी मनोरम छटा और स्वाभाविक आकर्षण के साथ मेरे समक्ष आ।"

२

पानी की अविरल गति में हिलोरें उठी। आकाश के पूर्वी विभाग में एक विशेष ज्योति दृष्टिगोचर हुई जिससे समस्त सृष्टि का चित्र ही बदल गया। और फिर उसी प्रकाश से चारों ओर सुधा की वृष्टि होने लगी। भगवान की पवित्र आकृति अग्नि शिखा की भांति प्रज्वलित हुई, पंक्षी गण संगीत मय कलरव करने लगे। कमल भगवान के सामने कुमारी के रूप में उपस्थित हुआ, उसमें इतना आकर्षण था कि भगवान स्वयं

चकित रह गये। विस्मित हो बोले; "पहिले तुम मानसरोवर में विकसित कमल थीं। अब तुम कल्पनिक नव मुकुलित पुष्प हो। बातें करो।"

निर्जीव शरीर में जान आ गई। कुमारी ने निर्दोषपूर्ण स्वर में कमनीय कोमलता से अपने अधरों को उसी प्रकार खोला जैसे कमल की पंखड़ियाँ मलयागिरि पवन के उन्माद पूर्ण झोंको से अपनी छटा का सुन्दर दृश्य प्रदर्शित करतीं हैं।

"भगवान! जब तुमने मुझे मानव जाति में परिवर्तित किया है तो बताओ, मेरा निवास स्थान कहाँ नियुक्त किया। जब मैं फूल थी तब वायु के झोंको से डरती थी, अपनी पंखड़ियाँ समेट लेती थी, वर्षा से भी भयभीत होती थी, बिजली की कड़क से काँप उठती थी, सूर्य की किरणों से सिहर उठती थी। तुमने मुझे कमल से मानव शरीर प्रदान किया, किन्तु मेरी स्वाभाविक प्रकृति अभी तक नहीं बदली। मृत्युलोक के वासियों से मैं अब तक डरती हूँ। बताओ, मैं कहाँ रहूँ।"

२

भगवान ने झुँझलाते हुये तारिका राशि पर दृष्टि डाली। क्षणमात्र तक सोचने के पश्चात् बोले, "क्या तुम पहाड़ों की चोटियों पर रहना पसन्द करती हो?"

"नहीं महाराज, वहाँ बर्फ पड़ती है और मैं बर्फ से डरती हूँ।"

"अच्छा.....तो मैं पानी की तह में तुम्हारे लिये कोई बिल्लौरी महल बनवा दूँगा।"

"पानी की गहराई में भयानक जीवधारी तथा अनेक विचित्र कीटाणु रहते हैं। वहाँ भी मुझे भय मालूम होता है।"

"तो क्या तुम्हें निर्जन बन प्रिय है?"

"निर्जन बन में भयंकर जंगली पशुओं का राज्य है। बियावान में आँधी की सरसराहट, बादलों की गड़गड़ाहट तथा बिजली की कड़कड़ाहट से मेरे नष्ट हो जाने की सम्भावना है।"

"तो तुम्हारे लिये कौनसा स्थान नियुक्त किया जाय? अच्छा, यह बताओ कि क्या तुम सब से अलग-थलग किसी गुफा में रहना चाहती हो?"

"वहाँ अंधकार है और भी भय लगेगा।"

भगवान सिर पर हाथ रख एक पत्थर की शिला पर बैठ गये। कुमारी भयभीत खड़ी रही!

४

निशा के अन्त के साथ साथ उषा की कालिमा ने आकाश के ललाट पर गुलाल का उपटन मल दिया। मान सरोवर की अविरल धारा और वृक्ष आदि ने स्वर्णमयी चादर ओढ़ ली। ऋतुराज के कोकिल कण्ठी पक्षियों के मधुरगान से निस्तब्धता भंग हुई और साथ ही साथ भगवान की तन्द्रा टूटी। उन्होंने कहा, "देखो, कवि बाल्मीक सूर्य देवता को दण्डवत कर रहा है।"

क्षण मात्र में फूलों पर से वह स्वर्णिम पर्दे का पटाक्षेप हो गया।

मान सरोवर के निकट ही वाल्मीकि प्रकट हुये। मानव शरीर में कमल को परिवर्तित देख कर उन्होंने वीणा बजाना बन्द कर दिया, वीणा हाथ से छूट गई, वह निस्तब्ध खड़े रह गये। मानों भगवान ने उन्हें वृक्ष की भांति जमा दिया हो।

भगवान अति प्रसन्न हो बोले—"बाल्मीकि सावधान।"

बाल्मीक ने कहा—"मैं प्रेम करता हूँ। प्रेम ही मेरे जीवन का सार है। इसी के संगीत से संसार उन्मत्त रहता है।"

भगवान के मुख पर अकस्मात् एक पवित्र आभा चित्रित हुई। अत्यहादित स्वर में बोले, "ऐ कुमारी, मुझे संसार में तेरे उपयुक्त स्थान मिल गया। तू कवि के हृदय में बास कर।"

बाल्मीकि ने फिर उसी भाव से कहा—"मैं प्रेम करता हूँ।"

भगवान ने अपनी आवच्छिनीय सर्व शक्ति से कवि के हृदय में धीरे धीरे कुमारी का प्रवेश कराया, और इधर बाल्मीकि के हृदय को भी बिल्लौर की भांति स्वच्छ, तथा निर्मल बना दिया। वह अपने पवित्र निर्धारित स्थान में धीरे धीरे प्रवेश कर रही थी। किन्तु ज्यों ज्यों उसने बाल्मीकि के अगाध हृदय की थाह पाई, उसका मुख पीला पड़ता गया और वह भयभीत हो गई।

भगवान विस्मय चकित हो बोले, "तुम कवि के हृदय में भी निवास करने से डरती हो।"

कुमारी ने अन्यमनस्क स्वर में उत्तर दिया, "भगवन्! तुमने मुझे कहाँ निवास करने की आज्ञा दी है। मुझे इस एक हृदय में पर्वत की बर्फ

से आच्छादित चोटियाँ, विचित्र जीवों से परिपूर्ण सृष्टि, पानी की अगमता और अँधेरी गुफायें, तात्पर्य यह कि हर वस्तु दृष्टिगोचर हो रही है और मैं बहुत घबड़ा गई हूँ।

भगवान ने कहा—"ऐ मनुष्य शरीर में परिवर्तित नव मुकलित पुष्प! धैर्य रख, यदि बाल्मीकि के हृदय में हिम है तो तू ऋतुराज की उष्ण वायु का झोंका बन जा और उसे पिघला दे। यदि पानी अगम है तो तू उसकी गहराई का अमूल्य मोती बन जा। यदि स्थान निर्जन है तो तू उसमें सन्तोष तथा हर्ष के बीज बो दे। यदि गुफायें अंधेरी हैं तो तू उनके अन्धकार में उज्वलित चन्द्र की ज्योतिस्ना बन प्रकाशमान हो।"

कवि बाल्मीकि जिसने पुनः निर्मितरूप से वाक् चातुरी प्राप्त की थी। उसमें इतनी और वृद्धि हुई कि—तू सर्वदा कुशल रह और तेरा प्रकाश भूले भटके पथिकों के लिये सत्यता का दीपक प्रमाणित हो।"

पाषाण रेखा

दफ्तर में बैठा हुआ 'लेजर' के पन्ने उलट रहा था केवल इसी अभिप्राय से कि एक बार फिर उन पर दृष्टि डाल कर व्यर्थ फुट-कर के खर्चों को भविष्य में काट छाँट कर सकूँ। यह कारखाना मेरा निजी था। फुटकर खाते में जो व्यय होता था उसका सम्बन्ध विशेष रूप से मुझसे ही था। परमात्मा की दया से मेरा आय पर्याप्त थी, मुझ पर लक्ष्मी की असीम कृपा थी और सम्भवतः इसी कारण मैं रंगरेलियों का आदी हो चुका था। उस समय लेजर के पन्नों के उलटने पलटने से मेरा अभिप्राय केवल मनोरंजन ही था।

लेजर के पन्ने नियमित रूप से अभी तक खुले हुये थे, हिसाब की रकम सम्मिलित रूप से मस्तिष्क में निरन्तर फिर रही थी, इतने में नौकर ने आकर सूचना दी कि कोई मेम साहब आपसे मिलना चाहती हैं। मेरे दफ़्तर में लगभग चार-पाँच अँगरेज कर्मचारी थे, सोचा कदाचित वह उन्हीं में से किसी से मिलने आई होंगी, तथापि एक उत्सुकता सी उत्पन्न हुई, मैंने प्रसन्नता पूर्वक कहा—"बुला लाओ।"

क्षण मात्र में जो मूर्ति दृष्टिगोचर हुई उसकी ओर निहारने ही में आश्चर्यचकित सा रह गया, ऐसा प्रतीत होता था जैसे गोरी जाति की छाया तक उस पर नहीं पड़ी थी। अवस्था मुश्किल से २४ वर्ष की रही होगी, हँसमुख चेहरा, नाटा क़द और प्रसन्न चित्त। इस अवस्था में विलायत की स्त्रियाँ घुटनों तक गाउन और शरीर के रंग के समान मोज़े पहनने को ही प्रचलित सभ्यता का स्तम्भ समझती हैं किन्तु इस आदर्श ने इस युवती को कदाचित अभी तक स्पर्श नहीं किया था। सजधज तथा बनाव शृङ्गार की सहायता से सौन्दर्य को नग्न कर के चारों ओर हलचल पैदा कर देना उसका स्वभाव न था बल्कि उसे देख कर गुमान होता था जैसे उसके आकर्षण का इस सांसारिक समूह से कोई सम्बन्ध ही नहीं, मानो वह स्वतन्त्र है, उसका सम्बन्ध केवल उसके शरीर तथा शरीर के अंगों तक ही निर्मित है। बरसाती नदी के वेग के समान समस्त झाड़-झंखाड़ को अपने प्रवाह में बहा ले जाकर केवल समुद्र से ही मिल जाने की इच्छुक है। कवि शिरोमणि कालीदास ने अपने "कुमार सम्भव" में तपस्विनी उमा के

सौन्दर्य का जो चित्र खींचा है इस युवती की सुन्दरता बहुत कुछ उसी से मिलती जुलती थी।

सामने वाली कुर्सी की ओर बैठने का संकेत करते हुये मैंने पूछा, "कहो तुम क्या चाहती हो?"

उसने कहा "टाइम्स आफ़ इण्डिया" में मैंने एक विज्ञापन देखा था कि आपके यहाँ एक टाइपिस्ट की आवश्यकता है, इसीलिये उपस्थित हुई हूँ।"

सभ्यता के नाते मैंने पूछा, "इससे पहिले किस दफ़्तर में थीं?"

उसने कहा "इससे पहले नौकरी की आवश्यकता न थी और न मैंने कहीं काम किया है, नौकरी की खोज में सब से पहिले आपकी ही सेवा में आई हूँ।"

मैं नहीं कह सकता कि मेरा हृदय क्यों स्वयं इस अपरिचित रमणी की ओर खिंचने लगा। अपने आपको सँभाल कर बोला "इस समय तो मैं तुम्हें अपरेंटिस के रूप में ले सकता हूँ, यदि भली भांति काम चला सकीं तो शीघ्र ही स्थायी रूपसे स्थान मिल जायगा..... वरन्।"

अभी मेरा वाक्य पूर्ण भी नहीं हो पाया था कि मेरे अन्तिम निराशापूर्ण शब्दों ने उसके हृदय को व्यथित करके मुख पर निराशा का जो आभाहीन चित्र खींचा, उसे देख कर मैंने अपनी ज़ुबान बन्द कर ली। मैंने देखा, वह अपने आपको सँभालने की चेष्टा कर रही है, वह बोली--जो आज्ञा, यदि मैं अपने कर्तव्य का भली भांति

पालन कर सकी तो मुझे स्थायी रूप से स्थान दीजियेगा अन्यथा जवाब दे दीजियेगा।

उसने ये अन्तिम शब्द कुछ ऐसे मार्मिक भाव से कहे कि मेरा हृदय द्रवित हो उठा।

उँगली से पास वाले कमरे की मेज की ओर संकेत करते हुये मैंने कहा "यह टाइपिस्ट की मेज है १० से ५ तक की हाजिरी है।"

❀ ❀ ❀

उसका नाम मारग्रेट लिली था।

लिली के आने के बाद मैंने देखा, दफ़्तर का हुलिया ही बदल गया है। कर्मचारियों की दृष्टि उसकी मस्तानी चाल का शिकार बन रही थी, इसके पहिले यह दफ़्तर स्मशान प्रतीत होता था। अब केवल लिली के आ जाने से ही वह स्वर्गीय आनन्द से भी बढ़ता जा रहा था। चपरासी से लेकर बड़े बाबू तक प्रसन्न दिखलाई देते थे। लिली की कार्यपरायणता, तत्परता तथा श्रम-बिन्दु उसके मुख पर एक नवीन आभा उत्पन्न कर रही थी। जिस प्रकार वायु का हल्का-सा झोंका फूलों की डालियों को चंचल कर देता है और वह इस सूक्ष्म कम्पन में अधिक सुन्दर दिखाई देते हैं, ठीक उसी प्रकार लिली का कठिन परिश्रम भी उसे सर्वाङ्ग सुन्दरी बना देता था। अब दफ़्तर में वह पहले जैसा कोलाहल और हंगामा न मचता, जो लिली के आने से पहिले प्रायः रहा करता था, ऐसा जान पड़ता था मानो किसी जादूगरनी ने हर वस्तु पर एक जादू सा डाल दिया हो।

मैंने देखा, दफ्तर में जो इने गिने एंग्लो-इण्डियन थे वे सब के सब टाइपिस्ट के चारों ओर मड़राया करते। किसी न किसी कार्य के बहाने वह उसके पास जाते, और कार्य के समाप्त होने पर भी वह वहाँ से टलने का नाम न लेते। लिली सिर झुकाये अपने कार्य में तल्लीन रहती, किसी की ओर भूल से भी न देखती, किन्तु जब वह कार्यवश मेरे कमरे में आती, तो उसका केश-पाश बिखरे हुये बादलों की भांति आलोड़ित हो उठता।

टिफ़िन के समय मैं बहुधा सुनता कि एक के बाद दूसरा आकर उसे आमन्त्रित करता, किन्तु लिली बड़ी सभ्यता के साथ उनके निमन्त्रण को अस्वीकार कर देती। उस समय भी वह बाहर न जाती। घर से ही अपने 'टिफ़िन कैरियर' में कुछ जल पान के लिये ले आती, और उसके पश्चात् फिर अपने कार्य में लग जाती। छुट्टी के उपरांत दूसरे कर्मचारियों की तरह वह जहाँ का तहाँ काम छोड़ कर न उठ खड़ी होती बल्कि जब सब चले जाते और दफ्तर में निस्तब्धता छा जाती उस समय अपना छाता लेकर बड़ी सावधानी से अपने घर का रास्ता लेती।

इस सुन्दरी के चारों ओर कैसा विचित्र जाल फैल रहा है, इस विचार ने मेरे हृदय को चलायमान कर दिया—हृदय और मस्तिष्क दोनों ही इस अनुभूति का केन्द्र बन रहे थे। मेरी इस अनुभूति में एक प्रकार की जागृति आ गई। कदाचित मैं इस ओर ध्यान भी न देता, किन्तु मैंने देखा कि दफ्तर के कल्र्क आदि उसे चैन से न बैठने

देते थे, अन्त में झुंझला कर एक दिन मैंने कहा यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो मैं तुम्हारी मेज़ अपने कमरे में रखा दूँ, और यह आज्ञा जारी कर दूँ कि स्वतन्त्र रूप से कोई व्यक्ति तुम्हारे पास टाइप का कोई कार्य लेकर न आये।

कृतज्ञता के बोझ से लिली की दोनों आँखें झुक गईं। उस समय उनमें मुझे एक स्वर्गीय आनन्द और आह्लाद की आभा प्रदर्शित हुई। उसने कहा, "यदि आप अपनी किसी सुगमता के लिये इस नवीन आयोजन को पसन्द करते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। लेकिन अगर मेरी सुगमता की खातिर आपके मन में इस नए आयोजन का विचार आया है तो इसकी आवश्यकता नहीं मैं बड़े मज़े में हूँ, और इन सब की पहले से ही आदी हो चुकी हूँ, इनसे मेरी कोई हानि नहीं होती।

अकृतज्ञता का यह बाण मेरे हृदय में चुभ गया। चकित होकर मैंने अपने हृदय को टटोला, देखा वहाँ भी दुख की काली घटा छा रही है, और एक ओर से दूसरी ओर तक बिजली की भांति उसका रहस्यमय मुख नृतमान था।

इस अनुपम नृत्य के प्रत्येक अदूषण भाव से संगीत की सोलहों कला अपने पूरे वेग से प्रेरित होकर अन्तस्तल में एक भूकम्प सा पैदा कर रही थी। क्या इस बिजली के साथ कुछ और भी है, इसे उस समय मैं नहीं समझ सका था।

❀ ❀ ❀

आकाश के चारों ओर घिरे हुए काले काले बादलों ने काजल का एक पहाड़ सा बना दिया था और उनका प्रतिबिम्ब स्वच्छ और निर्मल जलाशय पर इस प्रकार झलक उठता था मानो कोई देवी काले वस्त्रों से विभूषित होकर शराबियों की भांति अंगड़ाइयाँ ले रही है। दफ़्तर के कर्मचारी दिन भर के थके माँदे पक्षियों की भांति कुछ देर पहिले ही अपने घरों को चल दिये थे किन्तु लिली का ध्यान इस ओर नहीं था, उसके मशीन से इस समय भी खट-खट की आवाज़ आ रही थी।

बूँदें वेग से पड़ने लगीं। टपः टपः टपः वायु का वेग बढ़ गया, घनघोर घटा के कारण प्रकृति का समस्त प्रकाश अस्ताचल की गोद में कुछ इस प्रकार क्रमशः मुख छिपाता जा रहा था मानो सृष्टि का समस्त प्रकाश युगयुगान्तर के लिए उससे विरक्त हो चुका है, धरणी का लम्बा चौड़ा प्याला जैसे कालिमा से परिपूर्ण होता जा रहा है। किन्तु इस कालिमा में भी एक ऐसा हृदय उल्लसित था जो केवल सौन्दर्य और प्रकृति के स्पर्श और सम्मिलन के उपरान्त ही दृष्टि गोचर होता है। पानी की टेढ़ी तिरछी बूँदें दरवाज़े के आइनों पर तीर की भांति पड़ कर झनझना उठती थीं। किसी सोई हुई अभिलाषा ने हृदय के अन्तरंग से काले बादलों का पर्दा कब उठा दिया यह मैं न जान सका। उस पर्दे के उठते ही ऐसा प्रतीत हुआ कि अब तक जो पटाक्षेप था उसे इस सुन्दरी ने, जो चुपचाप सिर झुकाये अपनी मशीन चला रही है, क्षण मात्र में ही उठा दिया! क्या यह अपनी रंगीनियों से बेसुध है? कदाचित यह सोचती होगी कि मेरी कल्पना के उड़ान

की सीमा कहाँ तक है। मैं कुर्सी छोड़ कर उठ खड़ा हुआ और धीरे धीरे लिली के पास जाकर बोला—"देखो कैसी घनघोर वर्षा हो रही है"—सृष्टि में कम्पन, वायु में चुभन और आभास में जागृति आ गई है। ऐसे रमणीय और मनोहर अवसर पर भी तुम उसी सिर में दर्द पैदा कर देने वाले कार्य में व्यस्त हो?

जैसे ही लिली ने अपने विस्मयपूर्ण दोनों नेत्र ऊपर उठाए, ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई स्वच्छ सागर लहरें ले रहा है। मैंने देखा उसमें वही तल्लीनता का भाव चिर मुस्कान, सम्पूर्ण निस्तब्धता और सौन्दर्य का गौरवपूर्ण आभास. यह सब के सब विद्यमान थे। मेरी दृष्टि में लिली का वह स्वर्णकेशी हल्का सा छल्ला उसकी बिलौरी गर्दन पर ऐसा सुशोभित था जिसकी तुलना में इन्द्रासन की किसी भी वस्तु का कोई मूल्य न था।

मैंने कहा. "वायु के झोकों से एक ऐसा संगीतमय स्वर उत्पन्न हो रहा है जैसे मौजों के प्रत्येक चुम्बन का उत्तर किसी मधुर संगीत से दिया जा रहा हो। अपने इन तीस वर्षों में आज से पूर्व ऐसा हर्षोत्पत्ति परिचय प्राप्त नहीं हुआ। किन्तु आज तो इस स्वर की एक एक लहर हृदय में कामनाओं तथा अभिलाषाओं का जादू जगा रही है। इसी कारण बरबस तुम्हारी ओर खिंचा हुआ चला आ रहा हूँ। तुम काम बन्द कर दो।"

लिली ने कहा, "किन्तु मेरे जीवन में बसन्त तथा पतझड़ दोनों ही एक साथ प्रकट हुए थे। 'बसन्त' तो कभी का हृदयहीन बना कर

बिदा हो चुका किन्तु पतझड़ अब भी उसी समारोह से अपने अस्त्रशस्त्र के साथ मौजूद है। मधुर स्वप्न के दृश्य आरम्भ होने से पूर्व ही समाप्त हो गए। अब इस भूल भुलैया से मन उचट गया है। वर्षा ऋतु मेरे लिए कोई आकर्षण उत्पन्न नहीं कर सकती, मेरी स्वप्निल अभिलाषायें मधुमय प्रेम, आन्तिरक पीड़ाओं तथा अनुभव शून्य वेदनाओं की क्रोधाग्नि से मुर्झा चुकी हैं। केवल कुछ आंसू शेष रह गये हैं। कभी कभी उन्हीं से हृदय का आवभगत कर लेती हूँ"

मैंने कहा, "क्या तुम अपने आँसुओं का कुछ भाग मुझे भी दे सकती हो?"

एक दीर्घ निश्वास लेकर जैसे लिली ने स्वयं को विस्मृत करके कहा, "जो वेदनायें हृदय के अन्तरंग में मिल चुकी हों उसका बटवारा सम्भव नहीं। यद्यपि तुम्हारे प्रेम का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नज़र नहीं आया तो भी अपनी दुर्बलता का ज्ञान मुझे है। दुर्बलता मेरी हज़ारों लानतों के उपरान्त भी मेरी रक्षक है। अब मुझे शारीरिक कष्टों में एक प्रकार के आनन्द का अनुभव होता है किन्तु क्या करूँ, अत्यन्त विवश हूँ।"

धीरे-धीरे मैं लिली का हाथ अपने हाथ में लेकर बोला। 'क्या तुम मुझे अपनी कहानी सुनाओगी।"

लिली ने अपना हाथ मेरे हाथ में ढीला छोड़ कर कहा, "बहुत अच्छा, यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं, किन्तु

दुख इस बात का है कि सारी गाथा सुनकर तुम स्वयं समझ जाओगे कि तुम जो कुछ चाहते हो, उसे देने का मुझे अधिकार नहीं रहगया है। ये घटनायें केवल सत्य ही नहीं किन्तु मेरे जीवन का आर्तिनाद भी हैं।"

टाइपराइटर की मशीन बन्द करके, कागज़ों को एक ओर रखकर लिली ने वर्षा के स्वर में स्वर मिलाकर कहना आरम्भ किया :

अकस्मात् मैं एक सांघातिक रोग से ग्रसित होकर अस्पताल में भर्ती हुई। उस समय वह सर्जरी की अन्तिम परीक्षा पास करके जूनियर हाउस सर्जन के पद पर नियुक्त हुये थे। सीनियर हाउस सर्जन ड्यूटी पर न आये थे, इसी कारण रोगियों की देख-भाल का भार उन्हीं पर था। मेरे निकट आते ही प्रश्न किया, "क्या चाहती हो?"

एक यूरेशियन लड़की से एकाएक कोई हिन्दुस्तानी इस प्रकार बेतकल्लुफ़ हो जायगा, इसकी मुझे स्वप्न में भी आशा न थी। मैं झुँझलाकर बोली, "अस्पताल में क्या चाहिये? इलाज के लिये आई हूँ। तुम्हारे साहब कहाँ हैं?"

उसने कहा, "साहब आज छुट्टी पर हैं, कल आना।"

—"मगर मेरी तकलीफ़ बढ़ती जा रही है।"

"यदि मुझसे चिकित्सा कराना चाहो तो मैं तैयार हूँ।"

मैंने स्वीकृति दे दी, किन्तु उस व्यक्ति के साथ मैंने जो ज़्यादती की, वह भी समझ गई। देख-भाल कर कहा, "अच्छी तो हो जाओगी किन्तु समय अधिक लगेगा, यदि कहो तो अस्पताल में भर्ती कर लूँ।"

रोग की भयंकरता के कारण मुझे कितना कष्ट था इसका आप अनुमान नहीं कर सकते। चौबीस घंटे मछली की तरह तड़पती रही। उस दुखित अवस्था में एक दुख और बढ़ गया जो भीतर ही भीतर अपना काम करने लगा। दोनों में संघर्ष होने लगा। अन्त में स्वस्थ हो गई, केवल औषधियों से नहीं, किन्तु अजीतकुमार डाक्टर की सेवा और सुश्रुषा से।

कृतज्ञता के बोझ से मेरा सिर झुक गया। अस्पताल से चले आने पर भी अजीतकुमार से सम्बन्ध न तोड़ सकी। बहुधा उनको अपने घर बुलाती थी। किन्तु उनके साथ हमारा यह मेल-जोल एक व्यक्ति की आंखों में शूल बन कर खटकने लगा उसका अनुभव मुझे बाद में हुआ, किन्तु अब क्या हो सकता था?

जोन्स मेरा पड़ोसी था। उम्र में ६ साल बड़ा। सुडौल शरीर, प्रसन्न मुख, मधुर-भाषी, स्वभाव में अँग्रेजों की भाँति लापरवाही थी। बालपन का प्रेम, यौवन की मादकता को उत्तेजित कर देता है, कदाचित आप इससे परिचित होंगे। मेरा विचार था शीघ्र ही कोई ऐसा समय आयेगा जब हम दोनों साथ-साथ जीवन-यात्रा आरम्भ करेंगे और यही होता भी, यदि अजीत कुमार ने आकर हम दोनों के मध्य में एक दीवार न खड़ी कर दी होती।

जोन्स को मैं प्यार नहीं करती थी, यह बात न थी। किन्तु उसके हठीले स्वभाव से मैं बहुधा विवश हो जाती थी। वह मेरी स्वतन्त्रता में रोड़े अटकाता था, कुछ समय तक मैंने किसी प्रकार का विरोध नहीं

किया किन्तु इस अजीत के कारण हम दोनों में अनबन-सी पैदा हो गई।

एक दिन की बात है कि मैं अजीत के साथ बैठी हुई थी। बेतकल्लुफी बढ़ जाने के कारण भेद भाव का पर्दा उठ गया था, और इसी कारण हम शिष्टाचार से पृथक हो गये थे। इतने में जोन्स आ गया। हम लोगों को देखते ही उसके नेत्र लाल हो गये। और मुख आषाढ़ के बादलों के समान गम्भीर हो गया। मुझे उस समय ज्ञात हुआ कि स्त्री होना ही महा भयंकर पाप है। किन्तु क्या किया जाय स्त्री जब प्रेम व अनुराग में फँस जाती है तो उसकी अनुभूति में प्रकृति की आत्मा स्वयं प्रवेश कर जाती है।

इसके बाद फिर दिल खोलकर बातें नहीं हुईं। संध्या को ७ बजे अजीत विदा होकर चला गया। उसे मोटर पर सवार कर जब कमरे में वापस आई तो जोन्स ने क्रोध भरी आवाज़ से पूछा, "यह नेटिव कौन है?"

मैंने उत्तर दिया, "इसी ने मुझे अस्पताल में दूसरा जीवन प्रदान किया था।"

"चाहे कुछ हो किन्तु मेरे लिये यह सर्वथा असहनीय है"।

"तुम अकारण ही व्यग्र होते हो। आख़िर संसार में कृतज्ञता का भी कोई मूल्य है! अकारण ही बदगुमान होने के क्या माने? और फिर इसपर भी तुम हठ करते हो तो मैं विवश हूँ, चाहे इसका परिणाम कुछ ही क्यों न हो?"

कुछ क्षण तक जोन्स निस्तब्ध बैठा रहा, तत्पश्चात् घृणा की दृष्टि से मेरी ओर निहार कर चला गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल मैं बैठी हुई पत्र लिख रही थी। जोन्स ने धीरे से कमरे में प्रवेश किया। "लिली मुझे क्षमा करो। मैं अपनी भूल स्वीकार करता हूँ," उसने कहा।

उसने अपनी भूल स्वीकार कर ली! बात आई गई हो गई। मन का मैल दूर होगया। किन्तु जो मेघ आकाश मंडल में बिखर जाते हैं फिर उन्हीं से नीलाम्बर के घिर जाने की सम्भावना रहती है। साथ ही वर्षा और विद्युत की भी सम्भावना होती है यह बात उस समय न सूझी थी।

चार-पाँच दिन बाद की बात है। उस दिन भी अजीत मेरे पास बैठा हुआ था। अचानक जोन्स ने कमरे में प्रवेश करते ही कहा "लिली शीघ्र तैयार होजाओ। आज सिनेमा में बड़ा सुन्दर फ़िल्म आया है।"

मैंने कहा, "आज घर में मेहमान आये हैं इसलिए मुझे क्षमा करो।"

जोन्स ने कहा, "इस लुच्चे को मेहमान समझते तुम्हें लाज नहीं आती?" ओ काला आदमी, मेरी आज्ञा है कि आज से इस घर में क़दम न रखना।"

अजीत के आँखों में अग्नि जल उठी, किन्तु केवल दम भर के लिये, क्षण भर के बाद मेरी ओर देख कर बोला, "यह कौन व्यक्ति है? क्या

पागल है या वास्तव में मुझे अपमानित करने का इसे कोई अधिकार प्राप्त है ?"

मैंने कहा, "नहीं वह पागल नहीं है। वह मेरा मंगेतर है उसी के साथ मेरा विवाह निश्चय हुआ है तथापि इसको तुम्हें अपमानित करने का कोई अधिकार नहीं है। इस बात को उसे मैंने पहिले भी सूचित कर दिया है, किन्तु दुःख है कि उसने कुछ ध्यान नहीं दिया। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम बदला ले सकते हो। मेरी ओर से कोई आपत्ति नहीं है।"

अजीत ने हँस कर कहा, "वाह। तो यह प्रेम की प्रतिन्दिता है। मैं इसे क्षमा करता हूँ।"

किन्तु अजीत की क्षमा का मूल्य जोन्स न लगा सका। नेटिव समझ कर वह पागल कुत्ते की भाँति उस पर आक्रमण कर बैठा। ख़ूब गुथ्थम-गुत्था हुई। अन्त में जिस प्रकार बिल्ली चूहे को खिला-खिला कर फेंक देती हैं उसी भांति अजीत जोन्स को कमरे के बाहर निकाल कर अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गया।

मैं आश्चर्य चकित हो कर उस हिन्दुस्तानी का डील-डौल तथा शक्ति देख रही थी कि अकस्मात् बाहर से रिवाल्वर की भयंकर आवाज कानों में आई और साथ ही साथ अजीत भी कुर्सी से गिरा। दौड़ कर मैंने उसे कलेजे से लगा लिया, फौव्वारे की भांति उसके सीने से ख़ून की धारें फूट निकलीं, और मैं रूमाल से ख़ून को बन्द करने की व्यर्थ चेष्टा करने लगी।

अजीत ने मुस्कराते हुये कहा, "लिली ! मैं तो जा रहा हूँ किन्तु तुम उसे क्षमा कर देना। उसने जो कुछ किया ठीक ही किया। जो अतिथि उसके घर में सेंध लगाये वह इसी दण्ड का भागी है।"

अजीत के संकेत से जो उसके सीने पर पर्दा पड़ा था उसे उठा कर देखा, सहम गई। क्षण भर बाद उसके अधरों का अनगिनत चुम्बन लेकर मैं बोली, "प्रिय, तुम जीवित रहो, अन्यथा मैं यह टूटा फूटा हृदय ले कर क्या करूँगी।"

अपना मुख धीरे-धीरे मेरी आँखोंके सामने लाकर अजीत ने कहा "मुझे अपनी यात्रा पूर्ण करने की पूंजी मिल गई। अब मेरी साँस बन्द होती जा रही है।"

जैसे लिली की भी साँस बन्द हो गयी हो। दोनो हाथों से अपने आपको कम्पित करके सीने पर हाथ रख कर बोली, जिस वस्तु की साधना अन्तरात्मा करती है और जिस नाम के जाप का सुख लेती है उसे बाहर लाकर इस नश्वर संसार के प्रकाश में लाने से उसके गौरव की हानि होती है। इसी कारण दुःख और स्मरण के भेद प्रकट नहीं किये जाते। मेरा दुख भी मेरी एकान्तता का अनुपम और पवित्र प्रतिरूप है। इसी कारण किसी के सामने उसका प्रकट करना अच्छा नहीं समझती और यदि चाहूँ भी तो चारों ओर तूफ़ान उठ पड़ता है। अब तो वर्षा रुक गई, आज्ञा दीजिये।

मैंने कहा "मेरी मोटर तैयार है। चलो तुम्हें पहुँचा आवें।'

एक मधुर मुस्कान के साथ लिली ने कहा, 'नहीं, मिस्टर सम्सन; फासला ही क्या है। चली जाऊँगी। यह कह दरवाजा खोल कर बाहर निकल गई।'

दूसरे दिन जब दफ्तर गया तो लिली का पत्र मिला, उसने त्याग-पत्र भेज दिया था! और मुझे लिखा था कि तुम्हारा प्रेम मेरे सारे जीवन के लिए गौरवपूर्ण होगा, किन्तु जो प्रेम आँखों के सामने दुख व दर्द का चिह्न अंकित कर देता है उससे किसी व्यथित-हृदय की सेवा नहीं हो सकती। फिर ऐसे प्रेम का क्या मूल्य? प्रेम-चिन्ह कितना अमर होता है यह भी भली-भाँति समझती हूँ। कोई दण्ड, कोई प्रायश्चित, और कोई सांसारिक शक्ति इस चिन्ह को मिला नहीं सकती। इसी कारण किसी को इस आग में जलाना नहीं चाहती। अपने चारों ओर वियोग का एक घेरा मैंने बाँध रक्खा है। उसका कारण भी इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। स्त्री होना तो एक ऐसा अभिशाप है जिसे प्रकट नहीं किया जा सकता। जब स्त्री अपने स्वभाव के शिखर का घोर भेद जान जाती है तो केवल इस अन्तर का अनुभव ही, कि वह स्त्री है, जीवन बिताने के लिये काफ़ी है। मैं देखती हूँ कि मेरे भाग्य में यही लिखा है कि अग्नि-प्रज्वलित करके जलती रहूँ। क्या तुम बता सकते हो कि मैं परमात्मा के इस कोप को कैसे बदल सकूंगी?

अब मुझसे तुमसे भेंट न हो, यही अच्छा है। इसी कारण पत्र के साथ ही विदा माँग रही हूँ। सम्भव है कि तुम आज मुझ से रुष्ट; होजाओ किन्तु कुछ दिनों के बाद जब यह बात हृदय से दूर होजायगी तो तुम

वास्तव में मुझे निस्संकोच क्षमा कर सकोगे। मैं भगवान से प्रार्थी हूँ कि तुम मुझे भूल जाओ।

पत्र हाथ में लेकर कितनी देर तक बैठा रहा यह याद नहीं। जब होश आया तो क्या देखता हूँ कि जिस प्रकार कोई भूखा व्यक्ति अपर्याप्त भोजन को लालायित नेत्रों से निहारता है, ठीक उसी प्रकार मेरी दोनों आँखें लिली की खाली मेज़ पर जमी हुई हैं और नेत्र अश्रुपूर्ण हैं।

फिर एक बार पत्र को विस्तारपूर्वक पढ़कर मैंने उसके नीचे लिख दिया 'प्राण वल्लभे, मैंने भूल की। आज से तुम्हारे जीवन की घटनाओं के साथ-साथ मेरी इस घटना का भी सम्बन्ध होगया। अब मुझ में और तुममें कोई अन्तर न रहा। जोन्स ने तुम्हारे हृदय पर एक अपूर्ण चिन्ह बना दिया था और तुमने मेरे दिल पर वही मुहर लगा दी। इन दोनों की आग एक समान है। जैसे तुम ख़ून के आँसू रो रही हो, उसी भाँति मेरा हृदय भी नीर बनकर आँखों की राह निकल रहा है। न तुम भूल सकोगी न मैं भूल सकूंगा।'

म म ता

य तथा धर्म के विरुद्ध, धनवान, प्रतिष्ठित एवं कुलीनवंशी धर्मेन्द्र बाबू को पचपन वर्ष की आयु में भी सोलह वर्षीया कुमारी अर्जीता से विवाह करते संकोच न हुआ।

हिन्दू समाज के प्रतिष्ठित घराने में जन्म पाने के कारण अर्जीता को हिन्दू शास्त्रानुसार धर्म एवं शिष्टाचार की शिक्षा दी गई थी। विवाह हो जाने के उपरान्त उसने अपने कोमल हृदय में पतिदेव की पावन मूर्ति की स्थापना की और उसी को सर्वश्रेष्ठ मान कर आराध्यदेव के समान उनकी सेवा-शुश्रूषा करना प्रारम्भ कर दिया।

शारीरिक अवस्था की अपेक्षा आर्थिक और मानसिक परिस्थिति में धर्मेन्द्र बाबू पर परमात्मा की विशेष अनुकम्पा थी। वे सदा प्रसन्न चित रहते थे। उनके हँसमुख स्वभाव के कारण अजीता को किञ्चितमात्र दुःख का अनुभव न होता। वह भी उनके हास्य-विनोद से प्रसन्न होकर ऐसी तन्मयता से गृह-कार्य करती कि उसमें त्रुटि होने की सम्भावना ही न रहती। वृद्ध पति और युवती पत्नी दोनों का जीवन आनंद विनोद में सुगमता पूर्वक कट रहा था, जिसको देख कर अन्य सम्बन्धियों को ईर्ष्या होती थी। इस संसार रूपी अथाह सागर में कमल के समान सुन्दर और प्रफुल्लित अजीता के साथ धर्मेन्द्र बाबू का जीवन ऐसा प्रतीत होता मानो किसी आगाध सागर में नवविकसित कमल के साथ कोई गजेन्द्र रति-क्रीड़ा करता हो।

आज एक हफ्ते से धर्मेन्द्र बाबू की तबियत अच्छी न थी। मकान के एक कमरे में बिछे हुये सुसज्जित पलंग पर लेटे हुये करवट लेकर उन्होंने मध्यम स्वर से पुकारा, "अजीता!"

पास ही एक स्टूल पर बैठी हुई अजीता ने कोमल स्वर में कहा, "जी!" दोनों में वार्तालाप आरम्भ हो गया।

"मुझे क्षमा करो!", कहते कहते धर्मेन्द्र बाबू अजीता की ओर ताकने लगे। उनके नेत्रों से शोक-विषाद् तथा दुःख टपका पड़ता था, निर्बलतावश नयनों की डगमगाहट नेत्र-शम्बुकों में श्वेत एवं श्याम घटाओं के तुल्य नृत्य करती हुई जल-वृष्टि करने पर बरबस तुली हुई थी, ओष्ट काँप रहे थे। निर्बल शिथिल करों से पाटी पर रक्खे हुये

अजीता के हाथ को उन्होंने अपने हाथ में ले लिया, मानों मुँहसे कुछ कहने अथवा अपनी विह्वलता प्रकट करने का उनमें साहस ही न था।

अजीता ने कुछ अनुभव किया। मुँह फेर कर धीरे-धीरे हाथ छुड़ा कर पंखा झलते हुये प्रार्थना-जनित मृदुल स्वर से उसने कहा, "आप चुप रहिये। शान्त हो कर जरा सो जाने की चेष्टा कीजिये।"

"अजीता! शान्त होना ही तो मुश्किल है !!", कह कर धर्मेन्द्र बाबू ने एक दीर्घनिःश्वास छोड़ी।

"डाक्टर साहब ने आपको बातचीत करने से मना किया है।"

"हृदय की शान्ति के लिये तो वह लोग दवा नहीं दे सकते? वह बातों के लिये .. .... "

बात काट कर ही अजीता को विवश हो कहना पड़ा, "आप चुप रहें, फिर सिर में दर्द हो जायगा।" कहते कहते एक हाथ से जल्दी-जल्दी पंखा झलते हुये उसने दूसरा हाथ धर्मेन्द्र बाबू के सिर पर रक्खा।

अहा! सुकोमल और शीतल कर-स्पर्श से ही धर्मेन्द्र बाबू ने जैसे स्वर्गीय सुख का अनुभव किया। अजीता ने कहा—

"आप इस समय जरा सो रहिये।"

"सोऊँगा! पहले हृदय का बोझ तो हल्का कर लूँ। बोलो क्षमा किया?"

अजीता के नयन सजल हो गये। बड़ी कठिनाई से उसने अपने आपको सँभाल कर कहा, "आपने तो कोई अपराध नहीं किया, क्षमा किस बात के लिए ?"

"इस आयु में स्वास्थ्य अच्छा न रहने पर भी रूप पर मोहित हो कर मैंने तुम्हारे साथ विवाह किया, क्या यह कम अपराध है ?"

"किन्तु, विवाह तो मेरे बाबू जी ने किया था।"

"हाँ, मुझसे अधिक दोषी वह हैं; किन्तु फिर भी मेरी ही तो इच्छा थी। मेरी सम्पति और ऐश्वर्य देख कर और उसके चंगुल में फँस कर ही तो उन्होंने विवाह किया था ?"

"चुप रहिये, यह विचार छोड़ दीजिये। कोई और बातचीत कीजिए। इन सब बातों को जाने दीजिये। तबियत अधिक बिगड़ जायगी....."

"अधिक बिगड़ेगी ! अब इससे अधिक और क्या होगा ? मैं तो अब चला, दो दिन आगे या पीछे। अब और क्या होगा ?.. ..."

"नहीं, नहीं !! आप यह क्या कह रहे हैं। ईश्वर के लिये ऐसे वचन मुख से न निकालिये। भगवान चाहेगा तो आप शीघ्र स्वस्थ हो जायेंगे। इतना निराश होने की क्या आवश्यकता है ?"

"नहीं अजीता ! अब मैं संसार से उठ जाऊँगा। इस संसार में मेरे लिये कोई स्थान नहीं, कहीं ठिकाना नहीं। किन्तु, मेरी एक अभिलाषा है, केवल यह कि इस अमर महायात्रा के पूर्व मैं हृदय का बोझ हल्का कर लेना चाहता हूँ. . . . ."

कहते कहते धर्मेन्द्र बाबू की ज़बान लड़खड़ा गई, नेत्र बन्द हो गए, दशा शोचनीय होने लगी। सिर पर आयोडिक्लोन के छींटे देते हुये दुःखिता अजीता शीघ्रता से पंखा झलने लगी। कुछ-कुछ नींद का प्रभाव दिखाई दिया। आध घण्टे बाद धर्मेन्द्र बाबू अकस्मात् चौंक उठे। निराशापूर्ण दृष्टि से देखते हुये क्षीण स्वर में बोले, "ओफ़! ज़रा-सा पानी ....."

अजीता ने कम्पितकरों से उनके मुँह में कई चम्मच पानी डाला। तत्पश्चात घड़ी की ओर देख कर कहा—"दवा पीने का समय आ गया। दूँ?"

एक दीर्घ श्वास के साथ धर्मेन्द्र के मुँह से "हाँ" निकला और वे अजीता की ओर ताकने लगे। तीन दिन से उन्हें नींद नहीं आ रही थी। उनको प्रतिक्षण ऐसा प्रतीत होता मानो उनकी मृत्यु निकट आती जा रही है। अजीता के मदमाते नव-पल्लवित यौवन तथा सौन्दर्य को देख कर कभी वे आनन्द विभोर हो जाते थे। उनके शरीर का श्रम एवं मन का क्लेश पल मात्र में न जाने कहाँ विलीन हो जाता। किन्तु, आज उसी देवी के दर्शनों से मन में दुख, ग्लानि, शोक, संताप, विषाद और इन सब के कारण उन्माद उत्पन्न हो रहा था। मस्तिष्क बड़ी तीव्र गति से इसी बात पर विचार कर रहा था कि "मेरे मर जाने पर अजीता पर क्या संकट पड़ेगा? क्या वह उन संकटों का सामना कर सकेगी? क्या संसार का विषयी समाज उसे सुख की नींद सोने

देगा ? यह यौवन की उमड़ती हुई नदी क्या सीधे-सीधे अपने अंतिम लक्ष्य तक पहुँचने में उसे सहायता कर सकेगी ?"

अर्जीता बिजली के समान उठी। दवा की शीशी को हिला कर निर्देशानुसार एक मात्रा औषधि गिलसिया में उड़ेल कर ले आई और घूँट घूँट रोगी के मुँह में डालने लगी। मानो उस औषधि में संजीवनी प्रभाव था—दवा पीते ही धर्मेन्द्र बाबू ने एक विशेष शक्ति का अनुभव किया। कुछ क्षण चुप रहने के उपरान्त उन्होंने मध्यम स्वर में कहा, "हाँ ! इसमें तुम्हारे पिता जी का अधिक दोष है।"

अर्जीता ने उन्हें समझाने का फिर प्रयत्न किया, "चुप रहिये। देखिये, कहना मान जाइये। अधिक बोलने से मस्तिष्क पर भार पड़ेगा। ज़रा तबियत को सँभलने दीजिए।"

उसके कातर स्वर का मानो धर्मेन्द्र पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। उन्होंने उसी स्वर में उत्तर दिया।

"अब क्या सँभलेगी ! तुमसे कुछ बातें कहना चाहता हूँ। सम्भव है इसके बाद फिर अवकाश प्राप्त न हो। देखो रोको मत, मना न करो। अर्जीता ! हृदय की संचित भावनाएँ प्रकट हो जाने से कदाचित तबियत हल्की हो जाय।"

कहते कहते उनका बोलन बन्द हो गया—थोड़ी देर बाद उन्होंने निराशाजनक स्वर में कहा, "मालूम पड़ता है वह आख़िरी बातें भी न कह सकूँगा। तबियत भारी होती जाती है।"

सिर पर ठंढे पानी के छींटे देकर अजीता वेगपूर्वक पंखा झलने लगी। एकाएक धर्मेन्द्र बाबू ने आँखें खोल कर देखा और अजीता का कोमल कर अपने हाथों में लेते हुए कहा, "मुझे मना न करो---जो कुछ कहना चाहता हूँ कहने दो--तुम्हारे बाबू जी को मुझ जैसे बुझते हुए दीपक के साथ तुम्हारा विवाह कदापि नहीं करना चाहिये था।"

अजीता की आँखों में आँसू आ गये। मुँह फेर कर उसने कहा, "मैंने तो कोई बाधा नहीं उत्पन्न की।"

"यह तुम्हारी बुद्धिमत्ता थी इसी कारण मैं आज और भी दुःखित हूँ। उफ़! निर्दयी पिता ने केवल अपनी स्वार्थपरता के निमित्त बेटी के भले बुरे का ज़रा भी विचार न किया! बलिदान दे दिया!! किन्तु, इस बलिदान में मैं क्यों सम्मिलित हो गया? मैं चाहता तो स्वतन्त्र रह सकता था। आज इन समस्त अभिलाषाओं और इच्छाओं को तिलाञ्जलि देकर जा रहा हूँ। यदि कोई वस्तु साथ लिये जा रहा हूँ तो वह निरर्थक आहें हैं, उफ़! जीवन में कितने पाप किये किन्तु, सब से महान पाप यह है जो आज मेरी गर्दन दबाये हुए है।"

अजीता के नेत्रों से अश्रु-प्रवाह किसी भाँति भी न रुक रहा था। बड़े प्रयत्न से आँसुओं पोंछते हुये साहस करके उसने कहा, "मालिक के चरणों में चित लगाओ, वही शान्ति देंगे।"

"देंगे! देंगे! देंगे तो? अजीता! कहती हो देंगे? आह!.."

कहते कहते धर्मेन्द्र बाबू ने फिर आँखें बन्द कर ली। थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर आँखें मलीं। अजीता मुँह में दूध डालने गई। धर्मेन्द्र

बाबू ने सिर हिलाया। अजीता ने पानी दिया, उन्होंने कई चम्मच पिया। कुछ धीरज आया। धीरे धीरे अजीता ने पूछा :—

"आपके लड़कों को समाचार भेजूँ ?"

"नहीं।"

"अच्छा तो यही होता कि उन्हें समाचार भेज दिया जाता।"

"नहीं, अभी नहीं।"

"फिर कब ?"

"बाद में—अगर वह लोग आएँ तो अच्छा है—नहीं तो थोड़ी सी आग तुम्हीं दे देना।"

"राम राम ! ऐसी बात अपने मुँह से न निकालो। क्या इस दुःख के समय भी उन्हें देखने की इच्छा नहीं होती ?"

दोनों नेत्रों से कोनों से आँसुओं की दो बूँदें इस प्रकार निकलीं जैसे किसी चीज़ से कठिनतापूर्वक रस निकलता है। अजीता ने अपने कोमलकरों से उन्हें पोंछा—फिर आँसू गिरे—फिर उसने पोंछा—फिर गिरे !!

अजीता ने कहा—"मना क्यों करते हो, बुला लूँ ? अच्छा है वह आयें—" बात काट कर ही धर्मेन्द्र बाबू बोल उठे, "नहीं, यह मुँह उन्हें दिखाऊँगा ? ओह न दिखा सकूँगा !!"

"क्यों ? जो बाधा हो उसे दूर करो—अब भी समय है।"

'सम्भव है समय हो, किन्तु भरोसा नहीं। अजीता ! अब यह

सब बातें न करो; मुझे और कुछ नहीं चाहिये—शान्ति चाहिये शान्ति ! ज़रा सी शान्ति !!"

उनके नेत्र फिर बन्द हो गये। अजीता कुछ देर तक अवसन्न भाव से देखती रहा। अचानक न जाने क्यों उसे भय सा प्रतीत हुआ। धीरे धीरे उठ कर उसने पास का द्वार खोला। डाक्टर के अतिरिक्त दो चार और व्यक्ति भी वहाँ बैठे थे। संकेत से अजीता ने डाक्टर को बुलाया। उन्होंने आकर रोगी को भली भांति देखा भाला। अजीता सिरहाने खड़ी थी, दवा लेकर पति के मुँह में धीरे धीरे डालने लगी।

इसके पश्चात् धर्मेन्द्र बाबू की दशा शोचनीय होती गई, उन पर उदासी विशेष रूप से छाई हुई थी। देवनाथ ने बाहर से आकर उन पर पंखा झलते हुए अपनी स्वामिभक्ति का परिचय दिया।

२

अजीता ने पुकारा, "डाक्टर साहब ! ज़रा इधर आइये देखिये तो यही !!"

उन्होंने घबराई हुई अजीता को सान्त्वना देते हुये कहा, "घबराइये नहीं—आप कब से बैठी हैं। जाकर थोड़ा आराम कर लीजिये। यहाँ कोई और बैठा रहेगा।"

सिर हिला कर अनिच्छा प्रकट करते हुये अजीता ने कहा, "नहीं, मुझे कोई कष्ट नहीं है। जब भी जागते हैं, मुझे ही पुकारते हैं।"

'हाँ ! यह तो ठीक है—फिर भी·····?"

अजीता ने उत्सुकतापूर्वक पूछा, "इनकी दशा इस समय कैसी है ?"

डाक्टर साहब ने उसी प्रकार आश्वासनपूर्ण शब्दों में उत्तर दिया :

"आप घबराइये नहीं। सब कुछ ईश्वर के हाथ है।"

"मैं इनके लड़कों को सूचना देना चाहती हूँ।"

अजीता के इन शब्दों को सुन कर निकट ही बैठे हुये बाबू शिवनाथ जी, जो रोगी के लिये आवश्यक वस्तुएँ बाहर से ला दिया करते थे, बोले, "माँ ! यह तो उनकी इच्छा के विरुद्ध है।"

"हाँ, यह तो ठीक है, किन्तु, फिर भी उन्हें सूचना देना मैं आवश्यक समझती हूँ।"

"अगर आप कहें तो....."

बात काट कर अजीता ने कहा, 'हाँ, हाँ ! मैं कहती हूँ आप इसी समय उनके पास समाचार भेज दें। उनको तो इनके रोगग्रसित होने का भी समाचार विदित नहीं है। अभी एक पत्र लिख दीजिये कि कि इनका अन्तिम समय निकट ही प्रतीत होता है, वह लोग शीघ्र आयें। मोटर तैयार है। इसी समय कोई पत्र लेकर चला जाय।"

बाबू शिवनाथ ने पत्र लिखने के लिए जाते हुये पूछा आपके बाबू जी को भी लिख दूँ ?"

अजीता ने उत्तर में केवल 'नहीं" कह दिया।

शिष्टतानुसार शिवनाथ बाबू बोले, 'वह क्या कहेंगे ?....."

"नहीं नहीं ! उन्हें सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं।" अजीता के इन शब्दों में एक विशेष दृढ़ता थी और मुख पर श्रेयहीन आभा की एक झलक। उसके नेत्रों से आँसुओं के साथ साथ स्वाभिमान भी टपक रहा था और हृदय में अद्भुत कौतूहल मची हुई थी। अपने को साहसपूर्वक सँभाल कर लड़कों के बुलाने का आदेश देने के पश्चात् उसने रोगी के कमरे में प्रवेश किया। नौकर के हाथ से पंखा लेकर स्वामी पर झलने लगी। देवनाथ आँसू पोंछता पोंछता एक ओर जाकर खड़ा हो गया। अजीता ने एक बार उसे देखा किन्तु बाहर जाने के लिये वह उससे न कह सकी।

लगभग एक घंटा व्यतीत हो गया। बाहर बरामदे में कई मोटरों के आने की आहट सुनाई दी। अजीता का सारा शरीर थरथर काँपने लगा। अपने को यथाशक्ति सँभालती हुई हृदय पर पत्थर रख कर वह उठ खड़ी हुई। देवनाथ दोनों हाथों से अपना मुँह दबा कर बैठ गया। ज़ीने पर किसी के आने की आहट सुनाई दी। जो लोग आये थे सब पास वाले कमरे में चले गये। अजीता भी दरवाज़ा खोल कर सामने जा खड़ी हुई। मकान आगन्तुकों से भर गया। दो लड़के, दो बहुएँ, लड़की, पोते, पोती, नवासे, नवासी सब के सब आ एकत्रित हुए। अजीता ने एक बार दृष्टि उठा कर इन सब की ओर देखा फिर लज्जा और दुःख से उसका शीश झुक गया। उसके मन में यह विचार उत्पन्न होने लगे, 'हाय ! यह तो चाँद का बाजार है। किस लालच में पड़ कर उन्होंने इस सब को छोड़ कर मुझ कुलक्षणी की शरण ली !

इन सब के समक्ष मैं ही दोषी हूँ। मैंने ही बुड्ढे की आँखों के सामने आ कर उसका चाँद-सा बाजार उजाड दिया। जो घर कभी हरा भरा होने से जगमगा रहा था उसमें घोर अँधेरा उत्पन्न करने का कारण मैं ही हूँ।'

सोचते सोचते एक बार उसकी दृष्टि ऊपर उठी किन्तु लज्जावश शीश फिर झुक गया। वह फिर आँखें न उठा सकी।

आगन्तुकों ने भी चुपचाप अजीता की ओर दृष्टिपात किया, "उफ़ ऐसी मोहनी सूरत! क्या यह साधारण स्त्री है? हाय! हाय! बेचारी का भाग्य ही मन्द पड़ गया।" सब ने दुःखित चित अजीता को दयार्द्र दृष्टि से निहारा, यद्यपि इतने दिनों से वे उसे कोस ही रहे थे।

सिर झुकाये हुये डाक्टर के पास जा कर अजीता ने कहा, "वह लोग इस समय देखना चाहते हैं।"

डाक्टर ने स्वीकृत-सूचक संकेत किया। अजीता चुपचाप द्वार खोल कर एक ओर हट गई। उसमें लज्जा और विषाद ने एक ऐसी निर्बलता उत्पन्न कर दी थी कि जिससे वह पृथ्वी में गड़ी सी जाती थी। उसके नेत्रों से अश्रु-प्रवाह अब भी हो रहा था।

आगन्तुकों ने चुपचाप कमरे में प्रवेश किया और रोगी की शैया के चारों ओर खड़े हो गये। क्षण भर के पश्चात् धर्मेन्द्र बाबू ने नेत्र खोले और क्षीण स्वर में कहा, "वाह!.... कौन?.... क्या सब लोग आ गये?.... वाह!"

धर्मेन्द्र बाबू की दशा इस समय बहुत अधिक शोचनीय हो गई थी। यह अनुमान करना कि यह कितनी देर के और मेहमान हैं अत्यन्त कठिन था। उनके उन्मादपूर्ण शब्दों ने सब के हृदय पर और भी प्रबल आघात किया।

अजीता ने पास जाकर सिर नीचा किये भर्राते हुये स्वर में कहा, "ज़रा आँखें खोल कर देखिये तो सही।" उसका हृदय भीतर ही भीतर बड़े ज़ोरों से उछलने लगा, मानों वह छाती को फाड़ कर बाहर निकलने लिये के लिये उत्सुक हो रहा हो। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि मौत सिरहाने खड़ी धर्मेन्द्र बाबू को ले जाना ही चाहती है। वह सिसक सिसक कर रोने लगी।

धर्मेन्द्र बाबू ने आँखें खोल कर एक बार सब की ओर दृष्टिपात किया। उनके चेहरे पर किञ्चित प्रसन्नता की झलक दिखाई दी, मानों उनको जिस वस्तु की प्रतीक्षा थी वह मिल गई। पल भर तक ख़ुशी छाई रही, अजीता को भी आशा ने सान्त्वना दी; उसके निर्बल हृदय में फिर साहस का संचार हो उठा।

किन्तु उसी समय अकस्मात् धर्मेन्द्र बाबू का रंग पीला पड़ गया, नेत्र बन्द हो गये, दो बूँद आँसू निकले . . . .और. . . .

इसके बाद काल ने एक काला पर्दा डाल दिया। इस परदे के पीछे अमर लोक के प्रकाश में धर्मेन्द्र बाबू के लिए संसार का सारा दुःख-संताप न जाने कहाँ विलीन हो गया!

३

धर्मेन्द्र बाबू का देहान्त हो जाने के कुछ दिन पश्चात एक दिन उनके लड़कों ने अजीता से कहा, "आपने हमें बुलाया था ?"

दृढ़ स्वर में "हाँ" कहते हुये अजीता ने रंजीत और विजय के बैठने के लिये आसन दिया। दोनों भाई चुपचाप बैठ गये और बोले :

"किस अभिप्राय से हम लोगों को बुलाया था ?"

अत्यन्त मीठे स्वर में अजीता ने कहा, "वह बहुत सी जायदाद छोड़ गये हैं।"

"हाँ सुना है !"

"उनकी वसीयत के बारे में भी कुछ सुना है ?"

"हाँ सुना है-- सारी जायदाद आपको दे गये हैं।"

"जी, विवाह के समय मेरे पिता जी के सम्मुख उन्होंने यही वचन दिया था।"

"क्या हम लोगों के आगे इन सब बातों के कहने को कोई विशेष आवश्यकता है ?"

अजीता ने उत्तर दिया, "वह तो इस संसार को छोड़ कर चले गये। अब आप लोगों को मेरी ओर से मनमुटाव दूर कर लेना उचित है।"

रंजीत ने कहा, "आप अपने लिए जो उचित समझें करें और हमारे प्रति जो कुछ होगा उसके उत्तरदायी हम स्वयं होंगे। क्या आपने हमें इसी अभिप्राय से बुलाया है ?"

"नहीं, इसका मुझे क्या अधिकार है ? हाँ, मेरे प्रति उन्होंने अपने जी में जो सोचा था वह कर गये। अब मुझे भी अपना कर्तव्य पालन करना होगा।" यह कह कर अजीता ने वह वसीयतनामा उन दोनों सौतेले लड़कों के सामने रख दिया।

रंजीत ने कहा, "अब इसे देखकर हम लोग क्या करेंगे ?"

अजीता ने वसीयतनामा उठा लिया, फाड़ कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, दियासलाई लगा दी-- कागज के टुकड़े जल कर खाक हो गये।

"वसीयत तो नष्ट हो गया," अजीता ने कहा, "अब अपने पिता की जायदादके उत्तराधिकारी इस समय तो आप ही लोग हैं।"

इस दृश्य को देख कर दोनों भाई चकित रह गये। रंजीत ने कहा, "आपने यह क्या किया ?"

"जो किया, बहुत अच्छा किया। आप लोग उनके वंशज हैं, जायदादके अधिकारी हैं। मैं कौन हूँ जो इस जायदाद और धन-सम्पत्ति पर अधिकार जमाऊँ।"

"आप उनकी धर्मपत्नी—"

बात काट कर अजीता ने कहा, "जो हो, मेरा कोई अधिकार है, यह विचार मेरे हृदय में कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ।"

"क्यों ? आपके लिये कोई बाधा नहीं है। जायदाद तो आपकी है ही। वसीयतनामा आपने नष्ट कर दिया तो क्या ? कुछ और लिखा पढ़ी तथा बन्दोबस्त होगा।"

अजीता ने उत्तर दिया, "नहीं कह सकती। जानने की आवश्यकता भी नहीं। मेरे अधिकारों के प्रति अब कोई प्रसंग न छेड़ियेगा। मैं किसी भी प्रकार अपना कोई अधिकार सिद्ध करने का प्रयत्न न करूँगी। गहने तो उन्होंने मुझे बहुत से दिये हैं, वह दोनों बहुओं को दिये देती हूँ। वे पहनेंगी और मैं देख कर सुख पाऊँगी ....."

कहते कहते अजीता रुक गई मानों, किसी ने अज्ञात रूपसे बरबस उसके बोलने में बाधा डाल दी।

रंजीत ने कहा, "किन्तु आपका निर्वाह कैसे....."

"निर्वाह ? मैं ठहरी स्त्री जाति, उस पर भी विधवा ! दो मुट्ठी चावल और दो धोतियाँ मेरे लिये पर्याप्त हैं। इसमें खर्च ही कितना होगा, किसी न किसी प्रकार इतना तो प्राप्त हो ही जायेगा। मेरे विचार से, सम्भव है आप लोग जानते हों, मेरी माता ने यदि मुझे कुछ प्रदान किया है तो वह 'आन्तरिक प्रकाश' है। इसकी दिव्य ज्योति से मेरे मस्तिष्क का एक एक स्तर प्रकाशमान हो चुका है। मैं हिन्दू-कुल की ललना हूँ। हिन्दू जाति न्याय और सामाजिक शिष्टाचार के नियमों पर विशेष ज़ोर दिया गया गया है। दीन-दुखियों के साथ न्याय होना चाहिये, यही 'आन्तरिक प्रकाश' की कसौटी है। जो न्याय से काम लेता है वही आध्यात्मिकता का अधिकारी होता है। जिस हृदय में दीनता और न्याय नहीं वह नरक के अग्नि-कुण्ड से भी बुरा है। मेरी मां ने और कोई सम्पत्ति मेरे लिये नहीं छोड़ी। अजीता ने जिस समय ये शब्द कहे, उसके चेहरे पर एक विशेष शांति झलक रही थी जिससे उस पर एक

नवीन कान्ति छाई हुई थी। उसका मुख-मण्डल कर्तव्य परायणता और उत्तरदायित्व के मार्ग में सफल होने के कारण तेजोन्मय हो उठा था।"

"जानता हूँ आप सुशिक्षित हैं। फिर आपके भाग्य ने यह दिन क्यों दिखाया, यह कुछ समझ में नहीं आता। जो हो, आपने विद्या प्राप्त की है, इससे आप न केवल अपना बल्कि और दो चार का पालन-पोषण कर सकती हैं। किन्तु यह सब कहने की आपको आवश्यकता ही क्या है? बाबू जी की कोई सम्पत्ति भी आप अपने प्रयोग में लाने की आवश्यकता नहीं समझतीं? खैर! न लाइये, किन्तु अब आप मेरी माँ हैं और हम आपके पुत्र। यह मेरा अधिकार है।"

रंजीत के इन शब्दों में न जाने क्या जादू था। अजाता ने रोते-रोते अपने मुँह को दोनों हाथों से ढँक लिया। उसके हृदय में ममता जाग उठी। शरीर पुलकित हो गया।

क्षण भर रुक कर रंजीत ने प्रेमपूर्ण स्वर से बालकों के समान पुकारा, "माँ!"

"माँ, सन्तान की ममता त्याग कर क्या आप चली जायँगी?"

अजीता जैसे अधीर हो उठी। रोते-रोते उसने कहा, "माँ! मां! मैं मां! मेरी सन्तान होने का दावा आप लोग करते हैं?....."

दोनों भाइयों ने एक साथ समवेत स्वर में कहा, "हां, आप मां हैं! और हम आपके बेटे। मां! सन्तान का ही दावा आज आपके

ऊपर ज़ोर डाल रहा है—अब आप "मां" बन कर देवी के समान अपनी सन्तान के ही घर रहें।"

"रहूँगी, इसी कारण रहूँगी। मैं बहुत तुच्छ हूँ, मां कैसी होती है, यह मैं नहीं जानती। किन्तु एक लड़की की भांति तुम लोगों के पास रहूँगी। तुम लोग पूज्य हो। लड़की की ही भांति प्रेम-पूर्वक मुझे स्थान देना। मैं बहुत कृतार्थ होऊँगी।"

अजीता के नेत्रों से आंसुओं की धारा अब भी प्रवाहित थी किन्तु ये दुःख के आंसू न थे, उनमें ममता घुल-घुल कर बह रही थी।

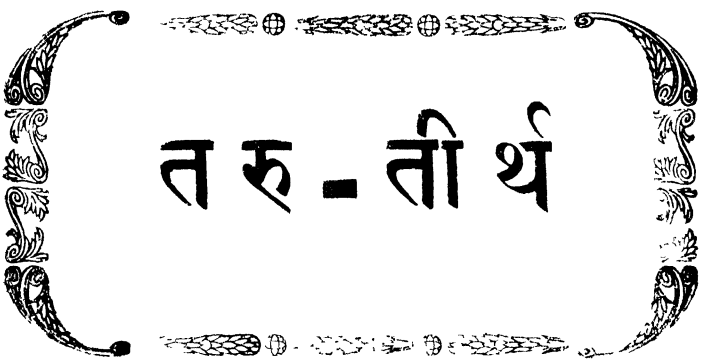

तरु-तीर्थ

दी के दूसरे तट पर एक गाँव था। सर्वसाधारण की दृष्टि में उसका महत्व किसी तीर्थ-स्थान से कम न था। कौन जाने वास्तव में वह कोई देव-स्थान भी था या क्या! किन्तु नदी के उस पार बन में, जो एक प्राचीन आम का वृक्ष था, वहाँ भारत के प्रत्येक भाग के यात्री श्रद्धा-भाव से प्रार्थना करते दिखाई पड़ते। केवल इतना ही नहीं, पुष्प-मालाओं से सुशोभित आम का वह वृक्ष ऐसा प्रतीत होता मानो श्रद्धा, भक्ति एवं पवित्रता से परिपूर्ण एक कान्तिमय मंडल उसके चारों ओर घिरा हुआ हो। क्या रहस्य था? वहाँ किस देवता का

स्थान था ? बात क्या थी ? इसका उत्तर हमारे साथियों में से कोई भी न दे सका।

किसी ने कहा, "इस वृक्ष पर जल चढाने से सब दुःखों का नाश होता है।" किसी ने कहा, 'समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं"। सारांश, जितने मुँह उतनी बातें, किन्तु श्रद्धालुओं ने जो महिमा-पूर्ण मन-गढन्त ऐतिहासिक कहावतों का अकस्मात् वर्णन किया उसे सुन कर तो मुझे हँसी आ गई।

लौटते समय मैं नदी के तट पर खड़ा था। वहाँ एक वृद्ध सज्जन भी मेरे साथ नदी पार जाने के लिये प्रस्तुत थे। पहली बार जब मैं लोगों से इस वृक्ष के संबंध में पूछताछ कर रहा था तो यही महोदय मेरी ओर बार बार दृष्टि डालते दिखाई देते थे। किन्तु वह क्षण मात्र में ही न जाने किधर अदृश्य हो गये और मैं उनसे कुछ पूछ न सका। इस बार उन्हें फिर देख कर इस वृक्ष के संबध में कुछ जानने के लिये मेरी इच्छा प्रबल हो उठी। अतः आगे बढ कर प्रणाम करने के उपरान्त इस वृक्ष के संबंध में वार्तालाप आरम्भ किया। वृद्ध ने उत्तर दिया कि इस वृक्ष के सम्बन्ध में मैं कुछ जानता तो अवश्य हूँ परन्तु इतना समय नहीं कि विस्तारपूर्वक सारी कथा सुना सकूँ।

सन्ध्या होने में अधिक देर न थी और केवट भी शीघ्र नाव ले जाने के लिये आतुर हो रहा था। मैंने पूछा, "क्या कहानी लम्बी है?"

उन्होंने कहा, "कहानी क्या, एक घटना है। जहां तक सुना सकूँगा सुनाऊँगा, लो सुनो।"

वृद्ध कहने लगा और मैं नदी किनारे हरी हरी घास पर बैठ कर ध्यानपूर्वक सुनने लगा।

"पहले इस नदी के किनारे एक घना जंगल था और इस वृक्ष के चारों ओर फूस की कुछ झोपड़ियां था। यद्यपि यहां कृषि संतोषजनक न थी तो भी देश तथा जन्म-भूमि के प्रेम में कुछ स्वाभाविक आकर्षण होता है। यहां के ग्रामीण इन्हीं उजाड़ दृश्यों तथा हरितवनों में आनन्द एवं उल्लास का अनुभव करते थे। जंगल से लकड़ियां काटना और नदी से मछलियां पकड़ना, यही उनका आजीविका का एक मात्र साधन था।

"इन्हीं ग्रामवासियों में एक राजपूत परिवार भी था। लकड़हारों के साथ ये लोग भी लकड़ियां काटते तथा फल बेच कर अपना जीवन-निर्वाह करते थे। जाति, गौरव तथा मान-मर्यादा की दृष्टि से यही परिवार गांव में सर्व श्रेष्ठ था। ये सुन्दर, बलिष्ट दीर्घकाय तथा हृदय की दृष्टि से देवता के समान थे। इसी परिवार के एक लड़के का नाम था शंकर। दूसरे परिवार में जो बालिका थी उसका नाम था कृष्णा। दोनों इस कानन में प्रफुल्ल कुसुम की भांति विकसित थे और सब से अलग होकर रहते थे। वे लता के मनोहर पुष्पों के समान मिलते और फिर पृथक हो जाते। उनके आमोद प्रमोद में एक स्वाभाविकता तथा नवीनता थी जिसके लिये दूसरे लालायति रहते। आनन्द, उल्लास तथा सुख-दुःख में एक दूसरे का वे निरन्तर साथ देते मानों एक ही तार से सम्बद्ध दो स्वर हों। निर्जन वन तथा नीरव नदी के किनारे

यह दोनों परस्पर खेलते दिखाई देते। यही दोनों अपने माता-पिता की एक मात्र सम्पत्ति थे।

२

"जैसे जैसे इन दोनों की अवस्था बढ़ती गई, इनके कुटुम्बियों की संख्या भी घटती गई। शंकर और कृष्णा का विवाह निश्चित हो गया, किन्तु यह शुभ अवसर देखने के लिये शंकर के माता-पिता जीवित न रह सके। उधर कृष्णा की रोग ग्रसित माता का स्वर्गवास हो गया। कृष्णा इस समय तेरह वर्ष की थी और शंकर की अवस्था का बाइसवां वर्ष प्रारम्भ हुआ था। दोनों अपने भविष्य के रजतपट पर यदा कदा रंगीन तूलिका फेरा करते थे। गांव के बड़े-बूढ़े इस असार संसार को क्रमशः छोड़ते जा रहे थे। पूर्वजों की मृत्यु के पश्चात् यहां के ग्रामवासियों को अपनी जीविका के निमित्त गांव छोड़ कर नगर की शरण लेनी पड़ी। गांव सूना हो गया। झोपड़ियां तहस-नहस हो गई, उनके स्थान पर धूल उड़ने लगी। शंकर ने विचार किया कि वह भी कृष्णा के साथ विवाह कर लेने के उपरान्त जबलपुर चला जायगा। वास्तव में निर्धनता तथा यातनाओं का प्रहार वे कब तक सहन करते? उसके विचार से कृष्णा को भी तो यहां कष्ट ही था?"

"किन्तु कृष्णा किसी प्रकार भी सहमत न हुई। वही नर्मदा तट, वही उसका समस्त नदियों से विपरीत प्रवाह! केवल इतना ही नहीं, इस घने वन के छायादार वृक्ष का प्राकृतिक स्थल, मधुर गान

करने वाले पक्षियों के प्राकृतिक संगीत, नर्मदा का मीठा जल, एवं जंगल के कन्द-मूल फल आदि स्वर्णमय पदार्थों की अपेक्षा कहीं रुचिकर थे। वन की धूल भरी वायु में सांस लेना वह नगर की अशुद्ध तथा दुर्गन्धित वायु से कहीं अच्छा समझता था। नर्मदा का स्वच्छ निर्मल जल और श्वेत पत्थरों के ऊँचे ऊँचे पर्वत तथा तन्दुल, अचार व सीताफल नगर में उसे कहाँ प्राप्त हो सकेंगे? फिर सब से अधिक प्रिय तो उसे वहां के पशु थे जो दिन में कई बार प्रेम से उसका हाथ चाटा करते थे। ऐसे रमणीक तथा मनोरंजक स्थान को त्याग कर कहीं और जाना उसके लिये असह्य था। उसे सुख की इच्छा नहीं थी। अतः उसने निश्चय कर लिया कि वह शंकर के साथ इसी वन में जीवन व्यतीत करेगी। नगर की हलचल तथा जन-समुदाय उसे पसन्द नहीं। इन वन की निर्जनता तथा शान्तिपूर्ण वातावरण में ही उसे आनन्द तथा मनोहरता का अनुभव होता है। और यहां की प्रत्येक वस्तु अपनी मूक भाषा में उससे बातचीत करती।

शंकर भी यह भली भांति जानता था कि मुँह से कृष्णा चाहे कुछ भी कहे किन्तु उसके लिये इस वन में सब से अधिक प्रिय एवं मन-मोहक वस्तु यदि कुछ है तो वह आम का छोटा वृक्ष जो पांच वर्ष पूर्व उन दोनों ने मिल कर लगाया था। कृष्णा प्रति दिन नर्मदा से जल लाकर उस वृक्ष की जड़ में डालती थी और शंकर उसके चारों ओर खुर्पी से थाला बनाया करता। वह समझता था कि यह वृक्ष कृष्णा का है। दोनों उस आम के वृक्ष का पालन-पोषण किसी माता-पिता की

इकलौती संतान की भांति करते थे। प्रेम वह शक्ति है जो कठिन से कठिन परिस्थिति में भी अपना प्रभुत्व जमा लेती है।

३

वृद्ध के मुख से यह वृत्तान्त सुन कर मेरा हृदय भीतर ही भीतर चुटकियां लेने लगा। दृष्टि उठा कर एक बार उस गगनस्पर्शी वृक्ष की ओर देखा, और मन ही मन विचार करने लगा कि क्या यही वह वृक्ष है जिसका पालन-पोषण स्नेह की गोदी में हुआ है?

मैंने अधीर हृदय से उत्सुकतापूर्वक पूछा, "फिर क्या हुआ?"

वृद्ध ने कहा, "होना क्या था? घोर विपत्ति का सामना करना पड़ा। समय सदैव एक समान नहीं रहता, यही सृष्टि का नियम है। जहां फूल है वहां कांटा भी है। कोई पदार्थ, कोई प्राणी, कोई जीवधारी, यहां तक कि पृथ्वी अथवा आकाश का कोई भी भाग इस परिवर्तनसे नहीं बचा। ऐसी आशा करना कि यहां सदैव हमारी भलाई होगी तथा हम सुखी रहेंगे, नितांत भूल है। हमारे मन और बुद्धि का निर्माण ही ऐसे तत्वों से हुआ है जो परस्पर एक दूसरे के प्रतिद्वंदी तथा विरोधी हैं। एक दिन कृष्णा अपना कामकाज समाप्त करके नर्मदा-तट पर बैठी थी। शंकर वही गया हुआ था। उसी की प्रतीक्षा में कृष्णा के व्यग्र नेत्र मार्ग की ओर टकटकी लगाये हुये थे। सोच रही थी कि शंकर अभी तक क्यों नहीं आया।"

निकट ही मिट्टी के एक ऊँचे टीले पर उसका वह आम्र वृक्ष था। धूप से उसके कोमल नव पल्लव शुष्क हो रहे थे। कृष्णा रह-रह कर

उस पर कातर दृष्टि डालती और सोचती कि दोपहर के समय तो वृक्ष में पानी नहीं डाला जाता किन्तु शंकर गया कहां ? वह यह तो भली भांति जानता है कि मैं बहुत देर तक अकेली नहीं रह सकती, मुझे भय प्रतीत होता है । उसके अतिरिक्त इस वन में मेरा है ही कौन ? फिर भी क्यों नहीं आया ? कहां गया ? बालिका धीरे-धीरे हताश और स्तब्ध होती गई । निद्राग्रस्त होने के कारण एक दीर्घ निःश्वास लेकर बेचारी वहीं धरती पर आंचल बिछा कर लेट रही ।

"शंकर, शंकर" की ध्वनि उसके कानों में गूँज उठी । कृष्णा चौंक पड़ी । उसने समझा शंकर आ गया है । "शंकर !" उसने पुकारा । परंतु यह तो शंकर नहीं । फिर यह कौन लोग हैं ? उसने भयभीत नेत्रों से देखा कि चार पांच अश्वारोही नदी पार उतरे हैं । इनमें से दो तो उसके बिल्कुल समक्ष थे ।.... ..एं ! ये कौन व्यक्ति हैं ? इनकी वेश भूषा सामान्य रूप से बहुमूल्य तथा भड़कीली हैं । बालिका की दृष्टि में घोड़े और उनके साज भी बहुत सुन्दर प्रतीत हुए । क्षण भर वह निस्तब्ध खड़ी रही, तदुपरान्त पीछे हट गई । उसके भयभीत नेत्र किसी को खोज रहे थे ।

आगन्तुकों में से एक व्यक्ति ने बड़े कोमल स्वर में पूछा, 'तुम कौन हो ? यहां अकेली क्यों बैठी हो ? क्या तुम्हारा घर इसी वन में है ?"

उसने नेत्र उठा कर प्रश्नकर्त्ता की ओर देखा, सुसज्जित तथा

रूपवान नवयुवक है, देखने से भय नहीं मालूम होता। बोली, "हां !" फिर वह उलटे पांव अपनी झोपड़ी में चली गई।

कृष्णा की माता उस समय सो रही थी। कृष्णा ने घर के कपाट बन्द कर के झरोखे से झांक कर देखा कि कोई उसका पीछा तो नहीं कर रहा है ? किन्तु उस ओर कोई नहीं आया। हँसती हुई वह कुटी की ओर निहारने लगी। वे पार उतर रहे हैं। सूर्य-रश्मियों से उनके शीश-मुकुट दीप्तमान हो रहे हैं। तलवारों की मूठ स्वर्ण जटित हैं। घोड़ों की चाल में बुंघरू की झनकार स्पष्ट सुनाई देती है। यह विचित्र दृश्य देख कर कृष्णा कुछ भयभीत सी हो गई। शंकर के आने पर वह अवरुद्ध कण्ठ से बोली.. ... 'तुम मुझे अकेला छोड़ कर क्यों चले जाते हो ? मुझे बहुत भय लगता है।" किन्तु शंकर की बलिष्ठ भुजाओं में उसका भय जाता रहा और वह उन नागवन्शुकों की चर्चा करने लगी।

शंकर ने भृकुटी चढ़ा कर कहा, "क्या वे लोग यहां भी आये थे ? यहां आने से उनका क्या प्रयोजन था ? वह तो युवराज अचलादित्य के सैनिक हैं। इस निर्जन वन में क्यों आये ?"

कृष्णा ने भी दो एक प्रश्न किये, किन्तु क्लान्त तथा व्यथित शंकर ने कोई उत्तर नहीं दिया।

४

तीसरे दिन शंकर फिर बाहर चला गया। प्रातःकाल वह प्रायः अपने खेत और उद्यान में जाया करता था। कभी-कभी लौटने में विलम्ब भी

हो जाता था। अस्तु, वह उस दिन भी दोपहर को घर लौटा। नदी के किनारे-किनारे मार्ग में अनेक मनुष्यों तथा अश्वों के पद-चिह्न देख कर विस्मित हो उठा। वह सोचने लगा कि बात क्या है। क्या अचलादित्य की सेना आज इधर फिर आई थी? ये लोग बार बार इधर क्यों आते हैं?

द्वार पर पहुँचते ही वह अवाक् रह गया। कृष्णा कहां गई? उसकी माता कहां है? इस घर में यह उदासीनता कैसी? कदाचित राजा की सेना को देख कर दोनों कहीं छिप गई हैं। इस रहस्य के उद्घाटन के लिये शंकर लकड़हारों के पास पहुँचा। उसे मालूम हुआ कि कृष्णा और उसकी माता को राज सैनिक राजधानी की ओर ले गये। अब कृष्णा राजरानी होगी।

शंकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा रह गया। ऐसे भयंकर परिवर्तन पर उसे कदाचित विश्वास ही नहीं हो रहा था। किन्तु इस प्रत्यक्ष तथा कटु सत्य से वह किसी प्रकार विमुख नहीं हो सका। समस्त घर में विषाद तथा निस्तब्धता छाई हुई है। विषाद तथा वेदना ने प्रसन्नता का अपहरण कर लिया है। क्या सचमुच मनुष्य-हृदय निराशा का घर और विषाद की बस्ती है?

वह नर्मदा के तट पर आया। रेत पर वही पद-चिह्न अब तक पहिले की ही भांति मस्तिष्क में घोड़ों की काल्पनिक टाप द्वारा वास्तविक रूप में आघात पहुँचाने लगा। हाय, आज से कुछ दिन पहले जब वह इस पतझड़ व्यापी कुञ्ज में आता तो प्रत्येक शाखा प्रेमबाहु

फैला कर उसका स्वागत करती थी। और आज सब की सब नत-मस्तक हैं!

मध्याह्न का सूर्य शिखर पर था। आकाश से अग्नि-वृष्टि हो रही थी। और शंकर आज पर्यटनशील पथ-भ्रष्ट भिखारी था। उसने एक बार अपने अन्धकारमय भविष्य पर निस्सहाय दृष्टि डाली—"उसका कौन है?" "कोई नहीं" "वह क्या कर सकता है?" "कुछ नहीं!" केवल यही दो हाथ उसके सब कुछ हैं, किन्तु यह हाथ-राज शक्ति के विरोध में क्या कर सकेंगे? हाथी और चींटी का सामना है?

और..... कृष्णा? वह तो चली गई! शंकर की प्रतीक्षा किये बिना ही चली गई। और क्यों न जाती? उसके दुखों का तो अन्त हो गया। वह राजरानी बनेगी! इतने बड़े वैभव, मान मर्यादा और ऐश्वर्य को कौन तज सकता है?

नर्मदा की अविरल धारा पर सूर्य की तप्त किरणें अग्नि-बाण की भांति बरस रही थीं। शंकर इस पार बैठा टेढ़े तिरछे मार्गकी ओर टक-टकी लगाये हुये था। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उस मार्ग में भी अग्नि-वर्षा हो रही है। यदि कृष्णा पाषाण-हृदया न होती तो जलती दोपहरी में इस भांति चली ही क्यों जाती?

शंकर ने अपने हाथ की लाठी पृथ्वी पर फेंक दी। प्यास से ओष्ठ सूख कर नीले पड़ गये थे, नेत्र शुष्क हो गये थे। वह उठा और गांव की ओर चल दिया। उस दिन वट-पूजन का त्यौहार था। गाँव की स्त्रियाँ

गाती-बजाती कहीं दूर बट-पूजन करने जा रही थीं। उनका मधुर संगीत शंकर के भी कानों में पहुँचा।

आज कृष्णा राजरानी होगी।

दूसरे दिन से उसे किसी ने नहीं देखा।

५

कितने ही वर्ष बीत गये! गाँव बिलकुल उजड़ गया, झोपड़ियाँ नष्ट हो गईं—उनके स्थान पर झाड़ियाँ उग आईं। क्रमशः वह स्थान घोर सघन वन में परिणत हो गया और कोई मनुष्य भूलकर भी उस ओर न जाता। वहाँ की निस्तब्धता इतनी भयंकर होती गई कि रात्रि का तो कहना ही क्या दिन में भी उधर जाते भय से हृदय सिहर उठता!

किन्तु इन्हीं झाड़-झंखाड़ के मध्य में शंकर व कृष्णा के बालपन का साथी, उनके प्रेम की मधुर स्मृति, स्वच्छ व निर्मल नर्मदा-तट पर अपनी विशाल भुजा फैलाये हरे-भरे पत्तों से परिपूर्ण वह आम्र वृक्ष सिर उठाये खड़ा था। बसन्त ऋतु की। जंगली लताएँ अनेकानेक पुष्पों से परिपूर्ण अपने सुहाग तथा यौवन की विचित्र छटा दिखला रही थीं। वृक्षों पर कोकिल कंठी रंग विरंगे पक्षीगण बैठे हुये अपने मधुर संगीत से समस्त वन को प्रमुदित कर रहे थे। टेसू के रक्त वर्ण पुष्पों में नव बधुओं की मनोहारिणी छटा का सा विकास था। नर्मदा की स्वच्छ निर्मल धारा तथा पहाड़ों पर जंगली बेल-बूटों के शृङ्गार

से प्रकृति स्वयं नव बधू सी प्रतीत हो रही थी। कृष्णा के लगाये हुये आम्र के बौर की मादक सुगन्ध से समस्त वन सुरभित हो रहा था। मादकता के उस प्रांगण में अमर सौंदर्य तथा संगीत के मध्य उस दिन एक मृत्युप्राय व्यक्ति अपना भाग्य ठोंक कर आ बैठा।

वह शंकर था। वर्षों के निरर्थक परिश्रम तथा सारहीन भ्रमण के पश्चात् आज वह देश लौटा था—जैसे उसे पूर्ण विश्वास हो गया था कि अब वह और अधिक इस नश्वर संसार में जीवित न रह सकेगा। और इसीलिए वह जन्म-भूमि के अन्तिम दर्शन की अभिलाषा लेकर यहाँ पहुँचा था।

वृक्ष के नीचे लेट कर उसने अमर दृष्टि डाली। देखा, नई नई कोंपलें तथा सुरभित बौर उसके उज्जवल भविष्य की सूचना दे रहे हैं; पवन की सरसराहट से नव पल्लव नृत्य कर रहे हैं। इस दृश्य से उसने उसी प्रसन्नता का अनुभव किया जो एक दीन कृषक को अपनी लहलहाती हुई खेती देख कर होता है। किन्तु कृष्णा तो इस दृश्य से प्रफुल्लित न हो सकी। कदाचित इस वन और इस वृक्ष का स्मरण भी उसे न होगा। और उसे हो भी क्यों वह तो शंकर का लगाया हुआ वृक्ष है? शैशव-काल की इस तुच्छ स्मृति की सम्भावना ही क्या? सब मिथ्या—वृक्ष मिथ्या, ग्राम मिथ्या, जन्म भूमि, बचपन की स्मृति, बालपन का प्रेम, सब मिथ्या—जगत मिथ्या।

अभागा शंकर चिल्ला चिल्ला कर रुदन कर रहा था; किन्तु उसके

कंठ से शब्द नहीं निकलते थे। पीड़ा से नेत्र लाल हो गये किन्तु नयनों में अश्रु-जल की एक बूँद भी दिखाई न दी। हाय रे आँसू!

ऐसी असहाय और दीन अवस्था में होने पर भी शंकर अकस्मात् उठ खड़ा हुआ। निकट ही उसकी झोपड़ी थी। वह शीघ्रता से उसकी ओर बढ़ा। कृष्णा की झोपड़ी नष्ट हो चुकी थी। मिट्टी के लोंदे पानी में गिर रहे थे। किन्तु शंकर की झोपड़ी अभी तक किसी न किसी प्रकार अपने अस्तित्व का प्रमाण दे रही थी।

क्यों—यह अब तक क्यों सुरक्षित है? कुछ क्षण तक शंकर ने यही देखने के उपरान्त एक टूटा हुआ बाँस लेकर झोपड़ी में प्रवेश किया। झोपड़ी बिल्कुल जर्जर हो रही था, बाँसों का टाट बिल्कुल झुक कर चूर चूर हो रहा था। बाँसों के प्रहार से शंकर उसे गिराने की चेष्टा करने लगा। पल मात्र में उसने समस्त झोपड़ी का संहार कर डाला। इसी झोपड़ी की भांति यदि कोई शक्ति शंकर के नीरस जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर देती तो वह कदापि रोक टोक न करता। आह! उसे इसी में सुख मिलता।

झोपड़ी के विनाश के बाद वह मन्द गति से नर्मदा के तट पर आया। यद्यपि उसे तृष्णा न थी फिर भी उसने दोनों हाथों से चुल्लू भर कर तीन चार चुल्लू पानी पिया।

शरीर में नई शक्ति व स्फूर्ति का संचार हुआ। अकस्मात उसकी दृष्टि बौर से लदे हुये उस आम्र-वृक्ष की ओर गई। शंकर को ऐसा प्रतीत हुआ मानों वह वृक्ष उसकी दीन दशा पर व्यंग-मुद्रा से

हँस रहा हो ! शंकर ने लांछना के स्वर में कहा, "ठहर ठहर ऐ वृक्ष ! अपनी मृत्यु से प्रथम हो शंकर तेरा भी अस्तित्व सृष्टि से मिटा कर कर रहेगा ! सायंकाल से पहिले ही वह किसी के कुल्हाड़े की खोज में नदी के उस पार गया ।

रात्रि को जब वापस आया तो वह अत्यधिक क्लान्त हो गया था । प्रातःकाल ही इस वृक्ष को काटना होगा; अन्यथा सम्भव है यह कार्य फिर न हो सके—वह नर्मदा के तट पर पत्थर की एक शिला पर पड़ा सोच रहा था । कब नींद आ गई वह स्वयं भी न जान सका । निद्रा-अवस्था में उसने एक विचित्र स्वप्न देखा, मानों उस आम्र के वृक्ष की जड़ से कोई अत्यन्त ही रूपवती युवती निकल कर उसके समीप आ रही है । उसके काले नेत्र अश्रु-पूर्ण हैं; उसके लाल अधरों में कम्पन है और वह करुण कातर दृष्टि से उसकी ओर निहार रही है । शंकर ने पूछा, "तुम कौन हो, क्यों रो रही हो ?"

युवती ने कहा, "मैं तुम्हारा प्राण हूँ ।"

"मेरा प्राण ! किन्तु तुम तो इस वृक्ष के भीतर से निकल कर आ रही हो ?"

उत्तर मिला, "हाँ, मैं इसी के भीतर रहती हूँ, परन्तु तुम इसे काटना क्यों चाहते हो ?"

स्वप्न में भी शंकर आवेश से भर गया । कर्कश स्वर में बोला "क्यों न काटूँ ?"

"तो फिर मैं मर जाऊँगी और तुम भी मर जाओगे; नहीं जी ! ऐसा कदापि न करना, इसे न काटना।"

"अवश्य काटूँगा, यदि वृक्ष काटने से मेरी मृत्यु आ जाय तो इससे अधिक प्रसन्नता और सुख की बात हो ही क्या सकती है ?"

सुन्दरी कांप उठी ! शंकर ने कहा; "तुम मेरी आँखों के सामने से दूर हो जाओ; अन्यथा मैं हत्या कर डालूँगा।"

स्वप्न टूट गया। शंकर ने अर्ध चैतन्य अवस्था में सुना सुन्दरी अति करुणामय स्वर में कह रही है, "वृक्ष न काटना, मेरा वध न करना न काटना ! न काटना !!"

नींद उचट गई। वही नर्मदा का तट और वही शिला, जल का वही गम्भीर प्रवाह, सिर पर वही नीलाम्बर और उसमें हीरे के समान तारक मंडल। उसने कैसा स्वप्न देखा ? 'स्वप्न हो या जाग्रत सत्य वृक्ष तो काटना ही होगा', यह कहते उसके शुष्क कपोल आँसुओं से भीग गये। वह फिर सोचने लगा—उस सुन्दरी ने सच तो कहा है, इसमें झूठ ही क्या है ? एक दिन उन दोनों ने इस वृक्ष का पालन-पोषण अपने प्रेमाङ्क में प्राणपन से किया था। फिर अब ऐसे उद्दंड विचार क्यों ? एक बात हो तो कही जाय। इस प्रेम कहानी के कितने ही परिच्छेद हैं। देश देशान्तर मारे मारे फिरते रहने पर भी इस दूरवर्ती वृक्ष की स्मृति उसे कहाँ ले आई ? यहा तो उसके सुख के दिनों की एक मात्र स्मृति है। कृष्णा की स्मृति भी तो इसी से ताज़ी होती है ? शंकर सजल नेत्रों से उस वृक्ष की ओर देखता रह गया, ऐसा प्रतीत होता

था मानों वह बवंडरों की लपेट में पँसा हुआ ज़बरदस्ती ऊपर फेंका जा रहा हो ! कल्पना-जगत की सैर वास्तविक संसार के प्रत्यक्ष आमोद तथा मनोरंजनों से किसी प्रकार कम आनन्द-दायक नहीं होती। बड़ी देर तक उसकी यही अवस्था रही।

नर्मदा की निर्मल धारा में उषा की स्वर्णिम आभायें दृष्टिगोचर हुईं। न जाने कहाँ से पक्षियों ने प्रभाती का स्फूर्तिदायक गीत अलापा; सुगन्धित पवन ने उन्माद तथा आनन्दोल्लास की वृष्टि की। इन मधुर भावनाओं तथा निष्कलंक दृश्य ने शंकर के हृदय में एक हलचल मचा दी। हाय ! इन्हीं प्राकृतिक दृश्यों तथा ज्योतित छटाओं ने शंकर की मनोभावनों को पीड़ित कर दिया ! बन के वैभवशाली वृक्ष ! शङ्कर मरे अथवा जीवित रहे किन्तु तेरे आकर्षण में अन्तर न आयेगा !

६

शिला से उठते ही शंकर ने अनुभव किया कि उसकी शक्ति क्षीण हो गई है। पैर उठते ही नहीं और सम्पूर्ण शरीर पर एक लाचारी की अवस्था बनी हुई है। क्षुधा तथा तृष्णा से शरीर जल रहा था। पानी से भी उसे रुचि न थी, इस वृक्ष और अपने जीवन के अन्तिम पतन का ही दृश्य देखने की उसे प्रबल लालसा थी। धीरे धीरे वह वृक्ष के निकट आया। बालारुण की सुकोमल रश्मियों से वृक्ष के पत्ते मरकत की भांति दीप्तिमान थे। पवन के झोंकों से बौर की उन्मादपूर्ण सुगन्ध समस्त वन पर छाई हुई थी। शंकर निस्सहाय दृष्टि से वृक्ष की ओर देखता रह गया। हाय, इस सुन्दर वृक्ष पर वह कैसे आघात करेगा !

सोचते सोचते उसके नेत्र सजल हो गये। एक दिन स्वयं उसका जीवन इस पुष्प से लदे हुये वृक्ष की भांति प्रफुल्लित तथा आनन्दमय था; किन्तु आज वह दिन कहाँ? उस पर कुल्हाड़ी चल गई। किसने अपने निष्ठुर हाथों से इस पर प्रहार किया? किसने इसकी सुन्दर शाखायें काट डालीं? विधाता ने? परन्तु क्या सृष्टि का निर्माण तथा विनाश भी उसी के वश में है? किसने एक बार सुख का हृदयहारी चित्र खींच कर उसे उन्मत्त तथा बेसुध कर दिया था? तो क्या उसी विधाता ने स्वयं उस चित्र को कलंकित कर दिया?

तो फिर इसमें शंकर का क्या दोष? जब इन्हीं हाथों ने वृक्ष लगाया है तो उन्हीं से काटा क्यों न जाय? स्वप्न में आई हुई बाला ने ठीक ही तो कहा है कि वृक्ष कटने पर शंकर की जीवन-लीला समाप्त हो जायगी। काटना ही होगा। जैसे उसका जीवन खंड खंड होकर शुष्क होता जा रहा है उसी प्रकार यह भी धूल में मिलकर पददलित हो तभी अच्छा है।

वह घबड़ा कर कुल्हाड़ी खोजने लगा; कहाँ गई? कदाचित नर्मदा तट पर ही रह गई हो। वह उचक कर बड़े उत्साह से वृक्ष पर चढ़ गया और हरी भरी डालियों को तोड़ तोड़ कर नीचे गिराने लगा। निर्बल भुजाओं में इतनी शक्ति? वृक्ष के नीचे पत्तियों और टहनियों का ढेर लग गया।

दिन के तीन प्रहर बीत चुके थे। प्रातःकाल से ही वह इस सर्वनाश के लिये कटिबद्ध था। उफ़! शारीरिक शक्ति क्षीण हो चुकी थी, नर्मदा

तट पर अब कैसे पहुँचे ? आतप के मारे कण्ठ और अधर शुष्क होते जा रहे थे। किसी प्रकार वह नदी के किनारे पहुँचा। किनारे किनारे हरी हरी घास उगी हुई थी, उस पर पैर पड़ते ही अंग अंग में स्फूर्ति का संचार हो गया। पानी पिये बिना ही वह उस हरित भूमि पर लेट गया। भाड़ में जाय पानी ! जब मरना ही है तो भूख-प्यास की चिन्ता ही क्या ? मृत्यु आये।

ऋतुराज के आह्लादकारी पवन के उन्मादपूर्ण झोंके उसके निष्प्राण शरीर में स्फूर्ति का संचार कर रहे थे; जैसे लावण्यमयी ज्योत्स्ना से परि पूर्ण संतोषदायिनी जलधारा अपने सहस्रों नेत्रों से दया-वृष्टि कर रही थी। आकाश के पूर्वी भाग में नीलवर्ण मेघों के झुंड उसकी हृदयगति को शान्त करने के लिये तत्पर थे। नर्मदा तट पर बट का विशाल वृक्ष अपनी बहुसंख्यक शाखाओं से शंकर को प्रेम-पाश में आबद्ध कर लेने के लिये लालायित था। चारों ओर से जैसे सहानुभूति तथा आश्वासन के संकेत मिल रहे थे। प्रकृतिमाता अपनी मृतप्राय सन्तान को गोद में लेकर स्वर्गीय प्रेम के आँचल में आश्रय देने के लिये व्यग्र थी। कौन जाने शंकर को कब नींद आ गई। दो दिन बीत गए किन्तु वह जल की एक बूँद भी स्पर्श न कर सका। जल स्वयं उसके निकट आया किन्तु अधर असफल हो रहे। बन के श्वान तथा शृगाल बारी बारी आकर परीक्षा कर गए कि वह जीवित है अथवा मृत। उखड़ी उखड़ी सांसों के अतिरिक्त उसके निश्चल शरीर में जीवन का कोई चिन्ह प्रतीत न हुआ। उषा की अरुणाभा के साथ साथ उसने फिर स्वप्न देखा। वही

स्वप्न ! फिर वही बाला अपनी आभाहीन मुखाकृति लिये सामने उपस्थित है ! आज शंकर के नेत्रों में देखने तक की शक्ति नहीं थी; फिर भी उसने उस बाला की ओर देखा। सुन्दरी का समस्त शरीर घावपूर्ण है—पीड़ा से उसका मुख मण्डल पीतवर्ण हो रहा है। नेत्रों में करुणा है। दूर खड़ी रह कर ही उसने कहा, "क्या वास्तव में तुम मेरा वध करोगे ?" शंकर ने कहा, "क्या अब भी तुम्हें सन्देह है ?"

"किन्तु मैं कौन हूँ, यह तो तुम भली भांति जानते हो। यदि मैं मर गई तो--"

"तो मैं भी मरूँगा, यही न ? यही तो मेरी हार्दिक अभिलाषा भी है। तुम जाओ।"

"मैं जाती हूँ किन्तु मेरी एक बात सुन लो ! मैं तुम्हारी हो हूँ, क्या मेरे बाद कृष्णा ने इस वृक्ष को अपने रुधिर से नहीं सींचा है ?"

गहरी निद्रा में होते हुए भी शंकर आवेश में आकर बोला "सींचा है, किन्तु इससे तुम्हारा सम्बन्ध ? तुम कृष्णा की दुहाई न दो। वह तुम्हारी कोई नहीं, जाओ।"

"मगर शंकर—"

"फिर वही अगर मगर" यह कह कर शंकर ने कुल्हाड़ी उठाई। किसी ने उसके हाथ पकड़ लिये --आँख भी खुल गई ! बाला कहाँ गई ? उसने मुँह फेर कर देखा—कुल्हाड़ी दूर पड़ी है। वृक्ष का काटना ही है, इस विचार से उसके शरीर में फिर शक्ति का संचार हो उठा। उसने खूब पेट भर कर पानी पिया। कुल्हाड़ी हाथ में लेकर धीरे धीरे

वृक्ष की ओर बढ़ा, केवल इसी अभिप्राय से कि पानी पीने से जो साधारण शक्ति उसमें आई है उससे शीघ्र लाभ उठा ले ; न जाने फिर क्या हो।

७

वृक्ष पर प्रहार होने लगे। निर्बलता तथा शिथिलता के कारण हाथ न उठते थे। इतने में अकस्मात् नर्मदा के उस पार एक जन समूह आता हुआ दिखाई दिया। क्या यह राजा की सेना है? वह जो श्वेत घोड़े पर राजसी सजधज से आ रहे हैं क्या वह महाराज हैं, अथवा राज पुरोहित?

और उनके पीछे! वह किसकी हीरे व जवाहरात से सुसज्जित पालकी है? मोतियों की झालर लटक रही है। क्या राजरानी की पालकी है? शंकर को मालूम था कि विपुलादित्य के बाद युवराज अचलादित्य राज सिंहासन पर बैठे हैं। क्या कृष्णा कहीं जा रही है? शंकर की शीघ्र क्षीण होने वाली शक्ति प्रातःकाल के दीपक की भांति अपनी जीवन-लीला समाप्त कर गई। वह उसी वृक्ष के पत्तों पर बेचैनी से लेट गया। यद्यपि पलकें बन्द होती जा रही थीं फिर भी उसने आंखें खुली रखने की चेष्टा की। सेना सामने से जा रही थी। सहसा एक हाहाकार सा उठ कर वायुमण्डल में छा गया। जो व्यक्ति हाथी पर सवार थे वे आपस में परामर्श करने लगे। सेनापति ने भी अपना घोड़ा रोका और सब के सब खड़े हो गए। पालकी के पीछे पीछे ब्राह्मणों के हाथों में फूलों की पिटारियाँ थीं। शंकर ने समझा, राजरानी नर्मदा के किनारे शिवालय में

पूजा करने जा रही हैं। बचपन में उसने बहुधा इसी मार्ग से राजरानी को बड़ी सज धज के साथ शिवालय जाते देखा था। किन्तु आज यह लोग यहाँ क्यों ठहरे ?

केवल ठहरे ही नहीं। देखते ही देखते पालकी उसी वृक्ष के नीचे आकर रुकी और क्षण भर में पर्दे को हटाकर सूर्य की प्रखर किरणों को भी लज्जित करती हुई एक परम सुन्दरी नवयुवती बाहर आकर खड़ी हो गई।

आहत वृक्ष, उसके कोमल नव पल्लव तथा बौर पृथ्वी पर बिखरे शुष्क हो रहे हैं। स्थान स्थान पर कुल्हाड़ी के घाव हैं !

यह क्या ! क्या यह कृष्णा है ? हाँ, प्रतीत तो वही होती है। वही मुख मण्डल, वही केशराशि, वही सब कुछ। राजमहल के सुखों से उसका सौन्दर्य राजसी वेशभूषा से सुसज्जित था।

कुछ देर तक शंकर चुप रहा, मानो वही कृष्णा अपनी बचपन की सहचरी। और शङ्कर भी उसी सुखमय अभिलाषाओं का स्वप्न देख रहा था।

ठहरो ! ठहरो ! कृष्णा !!

वह बोल न सका, किन्तु कृष्णा ठहर गई। वह वृक्ष की ओर दृष्टि जमाये हुये थी। मुख पर विस्मय तथा दुख की विषादपूर्ण रेखा स्पष्ट रूप से अङ्कित दिखाई पड़ती थी। पांव के नीचे कितने ही बौर पड़े हुए थे। हार्दिक कष्ट के साथ कुछ फूल उठा कर वह अपने अधरों तक लाई।

मेरा वृक्ष किसने काटा ? हृदय-विदारक चीत्कार के साथ कृष्णा दोनों हाथों से वृक्ष को अपने बाहुपाश में लेकर अबोध बालकों की भांति फूट फूट कर रोने लगी। दासियाँ तथा महल की अन्य स्त्रियां चकित रह गईं। बहुत चेष्टा करने पर भी वे कृष्णा को वृक्ष से अलग न कर सकीं। बन के एक साधारण वृक्ष के लिये राजरानी इतना आर्त-नाद कर रही हैं ? साथ वाली स्त्रियों में से कुछ तो चकित और कुछ सहानुभूति से भर कर सजल नयन हो रही थीं।

शङ्कर का शक्ति विहीन वक्षस्थल एक बार ज़ोर से धड़क कर निर्जीव सा हो गया। लोगों ने बलपूर्वक कृष्णा को पकड़ कर पालकी में बैठाया। उस समय कृष्णा का अन्तिम हताशपूर्ण क्रन्दन करुण-स्वर बन कर करुण संगीत की भांति हृदय-तंत्री पर झंकृत हो रहा था।

हाय ! हाय ! मेरा वृक्ष काट डाला ! मेरा वृक्ष !! कितना उल्लसित तथा उत्साहित होकर सेना आई थी; किन्तु लौटी तो जैसे वह कोई पराजित सेना हो। वन में फिर वही भयङ्कर निस्तब्धता छा गई। दूर से किसी जंगली पक्षी ने एक हृदय विदारक चीत्कार किया। कांपते हुए पैरों से शङ्कर बाहर आ खड़ा हुआ।

कृष्णा ने स्वयं कहा है। उसका वृक्ष है। वह रोते रोते कह गई है, "मेरा वृक्ष।"

शङ्कर खड़ा न हो सका। उसने दोनों हाथों से उसी कटे हुये वृक्ष का ठूँठ पकड़ कर सिर झुका लिया।

उसके पैर न उठते थे। किसी प्रकार वह उदराग्नि को शांत करने के लिये वन की ओर चला, मानो उसे अब तक भोजन की आवश्यकता न थी। अब नवीन रूप से आवश्यकताओं की अनुभूति जाग्रत हुई है। कुछ जंगली फल खाने के उपरान्त उसने नर्मदा का पानी पीकर क्षुधा तृप्ति की और बट-वृक्ष की शीतल छाया में जा लेटा। लेटते ही निद्रा आ गई।

फिर वही स्वप्न ! वृक्ष के भीतर से वही बाला आ निकली; किन्तु आज वह अकेली न थी, कृष्णा स्वयं उसके साथ थी। आज वह राजसी सजधज से हीन थी। वही पहिले वाली असहाय कृष्णा, वह बालिका और कृष्णा दोनों शङ्कर के समीप आ खड़ी हुईं। कृष्णा ने कहा, "शङ्कर ! क्या तुम्हीं ने मेरा वृक्ष काटा है ?" हिचकते हुये ने कम्पित स्वर में कहा "तुम्हारा वृक्ष ! नहीं कृष्णा, वह मेरा निस्तत्व जीव था।"

"तुम्हारा जीव ! सम्भव है, परन्तु क्या वह तुम्हारी एक मात्र सम्पत्ति थी ? क्या मैं उसकी .. .. "

स्वप्न टूट गया; कैसा विचित्र स्वप्न था ! किन्तु स्वप्न की झूठी माया में भी प्यारी आवाज़ कृष्णा के करुण स्वर की ही भांति प्रतीत होती थी।

उस समय जैसे शङ्कर के शरीर में पुनः एक नूतन शक्ति का संचार हुआ था। किसी प्रकार वह वृक्ष के पास पहुँच कर रुँधे हुये कण्ठ से कहने लगा, "माता नर्मदे ! अपनी सुधावाही जलधारा से इस वृक्ष को पुनः सजीव कर दो। यदि मेरे शरीर का समस्त रुधिर देने पर भी यह हरित हो जाय तो मैं इसके लिये भी प्रस्तुत हूँ।".

'यही इस वृक्ष की शेष कहानी है। शंकर की मृत्यु के उपरान्त लोगों ने इस वृक्ष का नाम कामना-तरु रखा और धीरे धीरे इसका महत्व और प्रतिष्ठा तीर्थ से भी अधिक बढ़ गई। जबलपुर में जो लोग 'मारबल राक्स' को देखने जायं, वह वे "तरुतीर्थ" का दर्शन अवश्य करें।' इतना कह कर वह वृद्ध सज्जन चुप हो गये। अस्ताचल की ओर अग्रसर सूर्य की रक्ताभ रश्मि उनकी भीगी हुई पलकों पर जगमगाती हुई दिखाई दी। मैंने भी अश्रुपूर्ण नेत्रों से इस कामना-तरु पर दृष्टि डाली और एक दीर्घ निःश्वास लेकर रह गया।

भूल

न्तला झुँझला उठी।

क्रोध में आकर उसने कंघी फेंक दी और कहा, "भाड़ में जाय।"

कुछ क्षण निःशब्द रहने के पश्चात् वह फिर बालों में कंघी फेरने लगी; किन्तु कुछ उद्दण्ड केश इस प्रकार विरोध पर तुले थे कि निरन्तर चेष्टा के उपरान्त भी वे वश में न आते। उसकी इच्छा थी कि केश-पाश को नवीन रूप देकर जूड़ा बाँधे। किन्तु वह अपनी असफलता पर बहुत ही लज्जित हो रही थी। बाल कंघी के वश में आते ही न थे। कठिन समस्या थी।

घड़ी की ओर देखा, सूई ५ से चल कर ६ तक पहुँचने में उत्सुक दिखाई पड़ती थी। झुँझला कर बोली, "यदि इस बार भी बाल न ठीक हुये तो समस्त बालों को कैंची से काट कर फेंक दूँगी।"

क्षण भर पश्चात् तनिक बालों को गीला कर, तेल मल कर फिर कंघी फेरने लगी किन्तु आज उसके बाल इतनी उद्दण्डता पर कटि बद्ध थे कि किसी प्रकार भी वे ठीक रास्ते पर न आते।

कुन्तला के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। छः बजने को हैं। सिनेमा का समय निकला जा रहा है। लाजवन्ती इत्यादि तैयार हो कर गई होंगी, किन्तु मैं इन्हीं में उलझी हुई हूँ।

छः बज गये किन्तु बाल न ठीक हुये!

कुन्तला ने कहा, यदि ठीक होते हों तो हों; वरन् अभी कैंची चलाती हूँ।

"हाँ, फिर तो अति सुन्दर सन्यासिनी सी लगोगी!"

यह कर मंगला अट्टहास कर उठी। कुन्तला इस अट्टहास से बहुत लज्जित हुई, यह तो उसका हृदय ही जानता था। स्वयं पर, बालों पर तथा विधाता पर उसे बहुत रोष आ रहा था। विधाता ने उसके बालों में इतनी कठोरता क्यों उत्पन्न कर दी?.....

मंगला ने कहा, "बलिहारी तेरे बाल काढ़ने पर! डेढ़ घण्टे से खड़ी खड़ी यही तमाशा देख रही हूँ।"

कुन्तला का मुख लज्जा से फीका पड़ गया। कहीं और कोई तो उसके साथ नहीं, है। दर्पण की ओर दृष्टि डालते ही बोली, "बहिन

क्या करूँ, देखो न ये बाल किसी प्रकार ठीक होते ही नहीं।"

मंगला ने कहा, "मैं तो मनमोहन के सन्तोष की प्रशंसा करती हूँ कि वह प्रतिदिन यह सन्तोष हारी दृश्य देखा करते हैं।

कुन्तला के पति मनमोहन ने कमरे में प्रवेश करते हुये कहा, "मेरा विचार है कि इसी प्रकार सारी स्त्रियाँ बालों के संभालने में घण्टों उलझी रहा करती होंगी।"

मंगला ने कहा, "अन्य स्त्रियों के ऐसे भाग कहाँ? आपकी श्रीमती जी ही ऐसी सौभाग्यवती हैं कि इन्हें आप जैसा पति मिला है, वरन् पुरुष तो बच्चों से भी कहीं जल्दी रूठ जाते हैं।

इसमें केवल पुरुषों का ही दोष नहीं, स्त्रियाँ भी अपनी मूर्खता से पुरुषों को खिझा देती हैं। वह समझती हैं कि यदि मैं तनिक भी और उदासीनता दिखाऊँगी तो पुरुष सदा उनके आंचल से बँधे रहेंगे।

हर्षित होकर मंगला ने कहा, "वाह! आप तो केवल वकील ही नहीं वरन् कवित्वपूर्ण परिहास का भी मादा रखते हैं। भूल से मैं अभी तक यही समझती रही, कि आप केवल वकालत के नीरस दर्शनशास्त्र में ही दक्ष हैं।"

उस समय कुन्तला का मुख वर्षाऋतु के मेघों से आच्छादित आकाश की भांति रहस्यमय तथा गम्भीर हो रहा था। दोनों नेत्र भरे हुये थे, ऐसा प्रतीत होता था मानों अभी घनघोर घटा की भांति उबल कर चतुर्दिशि जल-प्लावित कर देंगे!

मन ही मन मनमोहन बहुत विकल हो उठे; समझ गये कि उन्होंने कुछ क्रूरता दिखाई है, समय असमय का विचार नहीं किया। विनय-स्वर में बोले, "पता नहीं आज क्या हो गया वरन् ऐसे ऐसे काम तो चुटकी बजाते कर लेती हैं, क्यों कुन्तला ?"

जिसको सम्बोधित करके यह विनयपूर्ण वाक्य कहे गये थे, उसी के हाथ से देखते देखते जोर के साथ आइना, कंघी, तेल की शीशी, इत्यादि इत्यादि धरती पर आ गिरे !

"हाय ! यह किस दुर्भाग्य के लक्षण हैं। भाभी जी ! तनिक इनको समझाओ, नहीं तो मेरा घर में रहना कठिन हो जायगा।"

"क्यों, क्या तुम दोनों में प्रायः अनबन रहती है ?"

"भाभी जी ! क्या पूछती हो, जीवन में मैंने इतना अभिमान किसी में भी नहीं देखा। गत दो तीन मास की बात है कि एक दिन सन्दूक इधर से उधर उठवा कर रखा रही थी। मेरे मुख से निकल गया—'तुम दिन रात सन्दूक को इधर से उधर उठवाने में ही व्यस्त रहती हो। यदि भोजन बनाना पड़ता और दो चार बाल बच्चे भी होते तो क्या करती ?'

इतनी बात सुनते ही मुख लाल हो गया रोष। में आकर बोलीं, 'क्या मैं खाना पकाना नहीं जानती जो तुम मुझ पर यों व्यग्र कर रहे हो ? यदि यही बात है, तो बड़ी प्रसन्नता से मिश्रानी को विदा कर दो।'

इसके उपरान्त हफ्तों तक कोई मेरा हाल पूछने वाला भी नहीं रहा।

मंगला ने कहा, "वे दिन तो बड़े आनन्द से कटे होंगे?"

मनमोहन ने कहा, "आनन्द तो दूर रहा, कुन्तला ने बातचीत तक बन्द कर दी। ज्यों ज्यों मैं नम्र होने की चेष्टा करता था त्यों त्यों इनका दिमाग आकाश पर चढ़ता जाता था।"

"फिर यह मनोमालिन्य दूर कैसे हुआ?"

"बड़ी कठिनता से, जाने कितने अनुनय-विनय के बाद।"

मंगला हँसती रही।

लज्जित होकर मनमोहन ने सिर झुका लिया। मंगला कुन्तला के पास चली गई।

२

उस दिन कुन्तला सिनेमा देखने नहीं गई।

उसने कुछ ऐसी उदासीनता दिखाई और कुछ ऐसे कड़े शब्द कहे कि मंगला आपस के इतने घनिष्ट सम्बन्ध होते हुये भी खिन्न होकर उसी समय चली गई।

दो दिन पश्चात् .....

इन दो दिनों में कोई वार्तालाप बिल्कुल न हुआ; इतना ही नहीं बल्कि एक दूसरे के दर्शन भी न हुये। वकील साहब समझते थे कि ऐसी दशा में कुन्तला से बात करने की चेष्टा करना निष्फल होगा।

वार्तालाप आरम्भ की चेष्टा भी मनमुटाव बढ़ायेगी। इसी विचार से कुन्तला भी इसी प्रतीक्षा में रही कि कुछ दिन और व्यतीत हो जायँ।

घर के समस्त कार्य मशीन के पुर्जों की भांति सम्पादित हो रहे थे। मिश्रानी जी भोजन बनाती और खिलाती थी। नौकर अपने अपने कार्य में व्यस्त थे। मनमोहन भी नियमित रूप से आते जाते थे। किंतु प्रतिदिन की हलचल और इस तल्लीनता में कोई जीवनदायिनी मिठास न थी; बल्कि स्थान स्थान और समस्त कार्यप्रणाली पर मृत्यु सी छाई हुई थी। पति पत्नी दोनों एक दूसरे से पृथक रहते थे। राग-रंग, तान-तरंग और हास-परिहास तो बड़ी दूर की बात थी।

कुन्तला सोचती, हाय! इतना निकट होते हुये भी इतनी दूरी? हाय राम! उन्हें क्या हो गया था जो मंगला के सामने मेरा उपहास किया, अपमान किया। इसके उपरान्त दो दिन बीत गये वार्तालाप तो दूर रहा, क्षण भर के लिये वह एकान्त में मिले भी नहीं। क्या वह नहीं जानते कि किसी अन्य स्त्री के समक्ष पत्नी को अपमानित व लज्जित करना हृदय में कितना क्षोभ उत्पन्न करने वाली बात है? मंगला की दृष्टि में मैं कितनी नीच प्रमाणित हुई हूँगी। कुन्तला बहुत दुखित हुई। उसने निश्चय किया कि वह आत्महत्या कर लेगी। आत्महत्या जिससे मनमोहन के अतिरिक्त और पुरुष भी यह अच्छी तरह जान जान लें कि स्त्री जाति पुरुषों के खेलने का खिलौना नहीं कि वह उनकी समस्त निर्ममता तथा निष्ठुरता सहन करती रहे।

परन्तु.....परन्तु उसका यह इक्कीस वर्षीय तारुण्य-तरु,

उद्वेलित सागर सा तरंगान्वित यौवन, जो किसी तूफानी ज्वार की भांति निशदिन बढ़ता जा रहा है, उमंगों तथा अभिलाषाओं के आकर्षक दृश्य, हाव भाव की मादकता में तुमलोद्गार, मुकुलित सौंदर्य, इन सब को वह निष्फल तथा निरर्थक कैसे कर सकेगी ?. . . .

नहीं, विधाता के इस अमूल्य वरदान को असमय नष्टभ्रष्ट कर देने में क्या लाभ है ? अपने विध्वंस तथा विनाश के अतिरिक्त वह मनमोहन को भी दण्ड दे सकती है, ऐसा दण्ड जिससे वह सदा के लिये सावधान हो जाय ।. . . . .

वह दण्ड क्या होगा, कुन्तला यही सोचने लगी ।

ठीक उसी समय कामलता और पुष्पा दो बालिकाओं ने शोर मचाते हुये घर में प्रवेश किया ।

दोनों कुन्तला की पुरानी सहेलियाँ थी । जिन दिनों कुन्तला कन्या-पाठशाला में पढ़ती थी उन्हीं दिनों इन दोनों से घनिष्ठता हो गई थी । तीनों में इतना ऐक्य और मेलमिलाप था कि पाठशाला वालों के अतिरिक्त साधारणतः और लोग भी इस घनिष्ठता से परिचित हो गए थे ।

पुष्पा ने पूछा, "तू आजकल इतनी दुखित क्यों दिखलाई पड़ती है ?"

कामलता ने कहा, "ऐसा प्रतीत होता है कि यह एकान्त में बैठी हुई सर्वदा उन्हीं की ध्यान में व्यस्त रहती है ।"

कामलता का पति कवि था. इसलिये उसकी बातों में अधिकाँशतः कवित्वपूर्ण रूपक तथा सुन्दर उपमाओं का समावेश रहता ।

पुष्पा ने कहा, "कितने दिन हो गये तू दिखाई नहीं पड़ी। क्या कहीं गई हुई थी ?"

कामलता ने कहा, "कुन्तला हर समय प्रेमसागर में डूबी रह कर अमूल्य रत्न की खोज में व्यस्त रहती है। इसकी एकाग्रता आत्म-विस्मृति की सीमा को पार कर गई है। पुष्पा ! क्या तुझे ज्ञात नहीं कि प्रेम वह शक्ति है जो लोक परलोक की हर वस्तु पर प्रभुत्व जमाये रहती है। जिस कान में उसकी ध्वनि एक बार गूँज गई असम्भव है कि वह इस रस से ....."

बात काट कर पुष्पा ने कहा, "तू सर्वदा कवित्वपूर्ण राग अलापा करती है।"

इसके बाद इधर उधर की कितनी ही बातें होती रहीं।

वार्तालाप में पुष्पा ने कहा, "आज पूरे एक वर्ष के बाद भेंट हुई है। उस दिन क्षण भर के लिये थियेटर में मिली थी।"

कामलता ने कहा, "मालूम होता है कि परस्पर कुछ चख-चख मच गई है, नहीं तो ....

कुन्तला ने कहा, "तुम दोनों को देख कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव होता है। बाल्यकाल के दिन कितने सुन्दर थे, विशेषतः पाठशाला का जीवन कितना आनन्ददायक था। जब वे दिन याद आते हैं तो कलेजे पर सांप लोटने लगता है। और बहुधा अपनी करतूतों हँसी भी आती है।"

पुष्पा ने कहा, "सुनीति दीदी को बहुत याद आती है। पता नहीं वह

कहाँ हैं ? मैंने सुना है कि मेरठ में हैं;किन्तु ठीक पता नहीं चला। यदि एक बार भेंट हो जाती तो मैं उनसे हाथ जोड़ कर क्षमा मांगती। केवल तनिक से मतभेद पर उन्होंने मेरे कमरे में आना छोड़ दिया था।"

कामलता ने कहा, "उस छोकरे की बात भी याद है जो प्रतिदिन हमारी खिड़की की ओर आँखें बिछाये रहता था, सायकिल पर पीछे-पीछे फिरा करता था ?"

"हां, खूब याद है। किन्तु तूने ही तो शरारत से उसे दोहों से परिपूर्ण पत्र लिखा था ? तेरे पत्रानुसार वह यहाँ आया था और जब आया तो तूने भगवन्ती के हाथ पानी में मिट्टी घोल कर भेज दी थी ?"

कामलता अट्टहास कर उठी।

पुष्पा ने कहा, "कजलीतीज की रात्रि को जब तालाब पर स्नान करने गई थीं, उस रात्रि के सारे आमोद प्रमोद याद हैं ?"

कामलता ने कहा, "पहिले तूने ही तो छेड़खानी शुरू की थी ? उस दिन की शरारत में तेरा ही हाथ था।"

पुष्पा के गालों पर लालिमा दौड़ गई।

यद्यपि यह समस्त वर्णन केवल मनोरंजन के ही लिये था और इनके वर्णन से मनोविनोद तथा आमोद प्रमोद के अतिरिक्त और कोई अभिप्राय न था, किन्तु गत कजलीतीज की रात्रि के दृश्यों की स्मृति—चन्द्रमा के प्रकम्पित प्रकाश में झूला झूलना, निरर्थक छेड़छाड़, सहेलियों के साथ मिल कर स्वर में स्वर मिला कर कजली गाना, निठल्लुओं का जमघट, उनका व्यंगाघात फिर, अकस्मात् चन्द्रमा का बदली में

छिप जाना और घनघोर घटाओं का उमड़ना फिर रिमझिम रिमझिम पानी बरसना !— इन समस्त दृश्यों की स्मृति ने कुन्तला के आहत हृदय पर नमक छिड़कने का काम किया । भीतर ही भीतर उसका कलेजा मसोस कर रह गया । उसके मन में रह-रह कर यह विचार पैदा होने लगा कि यह लोग कितनी प्रसन्न हैं, हर समय हँसती खेलती रहती हैं । प्रफुल्लता इनका जन्मसिद्ध अधिकार है । और मैं ?..... मैं हर समय किसी न किसी काल्पनिक प्राणघातक शोक में व्यस्त रहती हूँ, जो भीतर ही भीतर घुन की भांति मेरा कलेजा चाट रहा है । कितनी अभागिनी हूँ, कदाचित मुझसे अधिक अभागिनी संसार में और कोई न होगी...

आखिर स्त्री का हृदय है न ! प्रेम का थोड़ा सा अभाव ही आन्तरिक कुढ़न का कारण बन जाता है । उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानों वह युग युगान्तर से इस वेदना से ग्रस्त होती चली आ रही है ।.....

नारी, कितना सूक्ष्म तत्व है !

३

ज्यों ज्यों समय बीतता गया, मनोमालिन्य भी बढ़ता ही गया । पति पत्नी दोनों के हृदयों में भेदभाव का अथाह सागर लहरें ले रहा था । दोनों वादविवाद कर के इस मतभेद को दूर करना चाहते थे । किन्तु आत्माभिमान प्रस्तावना की चेष्टा से अलग रहने पर कटिबद्ध था ।

मनमोहन बहुत कुछ सोचते और सोच सोच कर झुंझला उठते ।

उनके मन में बार बार यही विचार आता—इतनी बड़ी बड़ी रातें यों ही व्यर्थ चली जाती हैं। आँखों आँखों में सबेरा हो जाता है। चन्द्रमा की ज्योतिर्मय राशि और उसकी शीतल रश्मियां उनके सीने पर लोट-पोट कर यों ही चली जाती हैं। वृक्षों के भीगे हुये पत्ते वायु के झोंकों से झूम झूम कर हृदय में गुदगुदी उत्पन्न करते हैं। मौलसिरी के पुष्पों की मनोहर सुगन्धि चारों ओर आनन्दोल्लास की मस्ती बिखेरती और भीगी हुई टहनियों पर सुन्दर पक्षीगण बैठे हुये संतुलनता और संगीतमयता तथा माधुर्य का एकीकरण कर आत्म-विस्मृत की सृष्टि करते। इस संगीत में ऐसी विस्मृति तथा आह्लाद भरा रहता कि प्रकृति आत्मविभोर हो उठती।

मनमोहन के हृदय में उथल पुथल होने लगता .....

मधुर रात्रि, मधुरतर जीवन!

हृदय किसी प्रकार नहीं चाहता था कि वह अन्तर अधिक दिन तक रहे; किन्तु इसमें मेरा क्या दोष था? स्वयं उनकी सहेली ने ही तो छेड़छाड़ की थी। बात बात में यदि मैंने भी एक दो बातें कह दी तो इसमें बुरा मान जाने की बात ही क्या थी? और फिर कुन्तला क्या इससे परिचित नहीं कि मैं उसे कितना प्यार करता हूँ.....कि वह जरा सी बात में इतना रुष्ट हो गई है। मरूँ या जिऊँ, कोई पूछने वाला नहीं।

भारमय जीवन!

उधर कुन्तला भी रो रही थी .....

उसका इक्कीस वर्षीय गदराया हुआ यौवन! वक्षस्थल में

हृदय नहीं वरन् एक झंझावात था, प्रबल अभिलाषायें बेलगाम घोड़े के भांति चढ़ाव-उतार की कोई परवाह न करती थीं—व्यग्र होकर वे प्रकट हो ही जाती थी।

तारिकाओं की राशि से सुसज्जित आकाश, प्रकाश की मदिरा में निमज्जित रात्रि, नीरव और शांतिमय क्षितिज, पुष्पों की भीनी भीनी सुगन्ध के भार से बोझिल वायु के हलके स्पन्दन, बूँद बूँद ओस का गिरना, यह समस्त मादकता कुन्तला को विह्वल किये देती थी। यह उन्मादजनक दृश्य तो प्रियतम के बहुपाश में बैठ कर आनन्द लेने के लिये है। मस्ती जागरूक हो रही है। कुन्तला की इच्छा हुई कि वह दौड़ कर उस बाहुपाश में पहुँच जाय जो उसका प्रेममंच है। वे प्रेमातुर नेत्र जिन्होंने उसे प्रेम की दीक्षा दी, वह पति, जिसके चरणों पर पातिव्रत जीवन की अन्तिम श्वास तक उत्सर्ग के लिये प्रस्तुत रहती है, प्रेम की वह गहराइयाँ, जिनमें डूब कर कोई उभर नहीं सकता, वही मेरा चरम लक्ष्य होगा। प्रियतम! क्षमा! क्षमा!! मुझे क्षमा करो! मैं स्वयं को तुम्हारी आत्मा में लीन करने के लिये सर्वथा प्रस्तुत हूँ। क्या तुम्हारी भावोन्मिलित दृष्टि विद्युत की लहर और जीवन का संदेश बन कर मेरे शरीर में न समा जायेगी? क्या केवल तनिक सी बात के लिये मैं तुम्हारे संगीत की उन जादूभरी स्वर लहरियों से वञ्चित हो जाऊँगी, जो मुझे सर्वदा आत्मविस्मृति प्रदान करती रही हैं? क्या मेरा आनन्द-कानन सदैव के लिये सूना हो जायगा?

इतने निकट होते-हुये भी यह दूरी! हाय राम!!

फिर.....चलना चाहिये।

किन्तु फिर आत्माभिमान ने आकर रुकावट उत्पन्न कर दी। एक ओर हार्दिक इच्छाओं तथा मनोभावनाओं का ज़ोर तथा दूसरी ओर आत्माभिमान ने पैरों में बेड़ियाँ डाल रखी थीं।

विह्वल, व्यग्र, निर्बल मनोभावनाओं को अहंकार व अभिमान ने नीचा दिखाया। जिसके लिये वह इतनी विकल है, जिसके लिये वह रो रही है, जिससे मिलने के लिये उसके शरीर का रोम रोम बेचैन है, उन्होंने तो भूल कर भी बात न पूछी.....क्या वह कभी क्षण भर के लिये भी यहाँ आये हैं? फिर इसमें कुन्तला का क्या दोष? यदि बाल न बँधते थे तो उन्होंने उपहास क्यों किया? और फिर एक अन्य स्त्री के सामने। इसी कारण तो मैं वहां से चली आई। किन्तु क्या उन्हें उचित न था कि वह स्वयं आकर खबर ले जाते।

अच्छा चलूँ तो सही, मैं स्वयं उन्हें पुकारूँगी। देखूँ तो सही, वह कैसे चुप रहते हैं?

मानों कुन्तला को इस असमञ्जस ने पागल बना दिया..... वह बहुत देर तक इस दशा में न रह सकती थी। उसने सोचा, मैं यहां से चली जाऊँगी। आज ही बाबू जी को पत्र लिखूँगी। वह आकर मुझे पटना ले जायँ, यदि नहीं आते, तो फिर जहाँ मन चाहेगा चली जाऊँगी।

चाहे जो भी हो वह इस दशा में और अधिक नहीं रह सकती।

४

उस दिन पड़ोस की एक बहू कुन्तला के घर आई थी।

बहू का छोटा सा घर था। ऊपर दो छोटे छोटे और नीचे केवल एक कमरा था। इतने दिनों तक पति ने उसे गांव में रखा था। इस बार मासिक वेतन में ५) का वृद्धि हुई थी, इसलिये १०) मासिक भाड़े पर एक मकान लिया गया। किसी प्रकार गुज़र बसर हो रही थी। चार प्राणी थे--माता, एक चौदह पन्द्रह वर्ष का छोटा भाई, बहू तथा स्वयं! बाबू जी ६०) मासिक पर कमिश्नरी में अहलमद थे।

पहले दिन जब बहू छत पर गई और घूँघट की ओट से कुन्तला के मनोरम बागीचे तथा कोठी पर दृष्टि गई तो उसका मन इस विशाल भवन को देखने के लिये लालायित हो उठा।

किन्तु साहस नहीं हुआ।

परन्तु जब उससे केवल एक दो वर्ष बड़ी सुन्दरी पूर्णमासी के शुभ्र उज्जवल चन्द्रमा की भांति दीप्तमान चेहरा लिये हुये छत पर दृष्टि-गोचर हुई और उसे संकेत से बुलाया, तो बहू ने घर के काम काज से किसी प्रकार समय निकाल कर वहां जाना आवश्यक समझा।

वार्तालाप में बहू ने कुन्तला के क्षोभ तथा मलिनता का कारण जान लिया। स्त्रियों की यह स्वाभाविक दुर्बलता है कि वे सहानुभूति से प्रभावित होकर बहुधा अपनी अवस्था का उद्‌घाटन कर देती हैं।

कुन्तला ने भी अपनी राम कहानी कह सुनाई।

बहू ने सारी बातें सुन लेने के बाद कहा, "जीजी, इसमें तुम्हारी ही भूल है।"

"मेरी भूल ?"

"हाँ, हम लोग स्त्री जाति हैं। स्त्री का जन्म पाकर सब कुछ सहन करना पड़ता है, इतना क्रोध स्त्रियों को शोभा नहीं देता।"

"तो, क्या स्त्री होने के कारण हमको अपनी ज़बान बन्द रखनी चाहिये ? चूँकि वह पुरुष हैं इसलिये जब चाहें तभी लाल-पीली आँखें करते रहेंगे और हमको सिर झुका कर सब कुछ सहन करना पड़ेगा ?"

बहू ने कहा, "विवाह होते ही स्त्री अपना सिर झुका देती है। यही स्त्री का धर्म है और यही उसकी मर्यादा। इसके अतिरिक्त तुम्हारे पति ने तो तुम्हारे साथ कोई अन्याय नहीं किया, जो कुछ तुम्हारी सहेली ने पूछा उसका उत्तर दे दिया। निश्चय ही इस वार्तालाप में उनका अभिप्राय तुम्हारे हृदय को आघात पहुँचाना न था ; बल्कि केवल हँसी में उन्होंने यह सब कहा। इतनी सी बात पर तुम्हें रुष्ट और क्षुब्ध न होना चाहिये .....जब तक स्त्री जाति प्रेम में डूब कर अपना सर्वस्व अर्पण नहीं कर देती उस समय तक स्त्री का जन्म सफल नहीं होता। जीजी ! मैं तो निरी मूर्ख हूँ, किन्तु इसी को स्त्री-जीवन का सर्व प्रथम उद्देश्य समझती हूँ।

इस बार कुन्तला ने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ क्षण के पश्चात्

बहू ने कहा, "अच्छा, जीजी ! अब चलती हूँ। आज्ञा दो, उनके आने का समय हो गया है," यह कह कर हँसती हुई वह चली गई।

कुन्तला के मन में बहू की इन बातों ने हलचल मचा दी ; जैसे कोई आन्तरिक शक्ति प्रत्यक्ष कह रही थी, 'यही स्त्री धर्म है। प्रेम के अथाह सागर में समस्त झाड़-झँखाड़ स्वयं बह जाते हैं !'

"इस साधारण तथा अशिक्षित ग्रामबाला ने कितना बड़ा पाठ पढाया है, उसके हृदय में पतिके लिये कितना आदर और सम्मान है, उसने कितने सुन्दर भावों को स्पष्ट किया है, उसमें कितना उत्साह और कितनी तत्परता है ! और मैं ?. . . . .हाय राम !!"

कुन्तला का हृदय भीतर ही भीतर रो उठा. . . .उसने निश्चय किया, कि वह आज ही क्षमा-प्रार्थना करेगी, कचहरी से आते ही सर्वप्रथम उनके चरणों पर गिरेगी।

कचहरी से आकर मनमोहन अपने कमरे में निस्तब्ध बैठे थे। संध्या हो चुकी थी। कमरे में पूर्णतया अन्धकार था। बाहर था निबिड़तम अन्धकार था, उनकी दृष्टि उसी अन्धकार में बार-बार चक्कर काट कर असफल वापस आ जाती थी।

भयंकर अन्धकार था।

कुन्तला ने कमरे में प्रवेश करते हुये कहा, "क्यों री पन्ना ! तूने अभी तक इस कमरे में दिया नहीं जलाया, सारे कमरे में अन्धकार छाया हुआ है ?"

मनमोहन ने कहा, "रहने दो, प्रकाश की आवश्यकता नहीं, केवल एक दीपक से क्या हो सकता है ? चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार है। मेरा जीवन भी कैसा सुन्दर जीवन है। समझ में नहीं आता, कि मनुष्य क्यों सहस्रों रुपये लगा कर इतनी चाह से विवाह करता है। यही तो गृहस्थी का सुख है। जब वही, जिस पर अपना पूर्ण अधिकार है हर समय खिंचा खिंचा रहता है तो सुख की सम्भावना ही क्या ?"

अब कुन्तला से न रहा गया, वह दोनों हाथों से पति के पैर पकड़ कर बोली, "प्रियतम ! मुझे क्षमा करो, अब कभी ऐसी भूल न करूँगी।"

आँसुओं से केवल मनमोहन के पैर ही तर नहीं हुये बल्कि वक्षस्थल भी भीग गया।

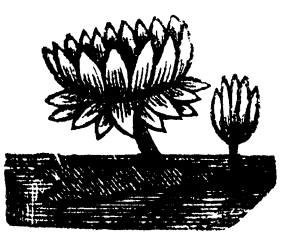

अग्नि - शिखा

मौं की गति न्यारी है। जिस द्वार से प्रवेश कर के एक दिन सरयूबाला उस विशाल भवन की मालकिन बनी थी आज उसी द्वार के निकट खड़े होकर उसके पांव न उठते थे; मानों उसे साँप सूँघ गया हो। एक एक पैर एक एक मन का सा भारी प्रतीत होता था। एक वह समय था जब गौरव के साथ वह दस आदमियों में अपना शीश ऊँचा किये इस गृह में शासन करती थी। और आज उसी गृह के द्वार से चोरों की भांति प्रवेश करते हुये उसके अन्तःकरण में एक कौतूहल सा मच गया। लज्जा और भय से वह एक बार पृथ्वी में गड़ी जा रही थी। हार्दिक शोक और विकलता से उसके मुख से निकल गया—माँ! हाय माँ!!

पति की बात याद आई, जिसके अगाध प्रेम को ठुकरा कर वह पाप के विषमाते अथाह सागर में डूबने जा रही थी। अभिलाषा की प्रज्ज्वलित अग्नि में पतंगे के समान न्योछावर हो जाने के लिये उन्मत्त हो दौड़ी भी। इसके बाद उसे स्मरण हुआ कि किस प्रकार किस देवता के प्रताप से उसकी बिसरी हुई बुद्धि जाग्रत होकर फिर उसे उसी धर्म के मार्ग पर बरबस खींच लिया जिसने उसके मस्तिष्क में कूट कूट यह विचार भर दिया है कि इसी गृह में ही उसके धर्म की समस्त सामग्री है, यही उसका जप-तप, यही उसका धर्म-कर्म और यही उसका पवित्र तीर्थ है। जीवन में यहीं उसका स्वर्ग है। उसने अपने हृदय को भली भांति आश्वासन दिया और साहस करके हौले हौले गृह में पांव बढ़ाया।

२

डाक्टर हरिहर सहाय आराम कुर्सी पर लेटे हुये 'अग्नि-कुण्ड' नामक उपन्यास में विमला के बलिदान और महानता के चित्र देख देख कर मन ही मन हैरान थे कि इस कुत्सित संसार में ऐसी ऐसी भी देवियाँ हैं जो प्रेम की वेदी पर अपने को न्योछावर कर देती हैं। वह पढ़ते जाते थे और लेखक के भावपूर्ण विचारों पर रह रह कर 'वाह वाह' के शब्द उनके मुख से निकल जाते थे। इधर उनके मकान से मिली हुई वाटिका के नव विकसित पुष्पों से सुरभित समीर से सारा कमरा सुगन्धित हो रहा था। अस्ताचलगामी सूर्य की पीताभ रश्मियाँ

किसी किसी विलायती फूल पर इन्द्र-धनुष की भांति जगमगा रही थीं। उस ओर दृष्टि पड़ते ही हरिहर बाबू अचानक चौंक उठे।

सरयू हौले हौले कदम जमाती हुई उनके पास आकर बोली, "मैं आ गई हूँ।"

हरिहर बाबू ने दूसरी ओर मुख फेर कर उदासीन भाव से पूछा, "क्यों?"

सरयू का चेहरा धूल के समान शुष्क पड़ गया, अश्रु नेत्रों को चीर कर बाहर निकलने को उद्यत हो उठे। अपने को बड़े धैर्य पूर्वक और दृढ़ता से संभाल कर वह दृढ स्वर में बोली, "आई हूँ अपने इस दूषित और लांछित जीवन को तुम्हारे चरणों में अर्पित करने—निश्चिंत होकर अपने घोर अपराध के लिए क्षमा-याचना करने।

बात काट कर हरिहर बाबू ने कहा, "मैं नहीं समझता कि यह कौन सी ज़रूरी बात थी। अपनी इच्छानुसार आपने जैसा चाहा वैसा किया। अब मुझसे क्षमा मांगने की आवश्यकता ही क्या है। इसके अतिरिक्त मुझे क्षमा करने का अधिकार ही कहाँ है?"

दुःखित स्वर में सरयू ने कहा, "यदि तुम्हें अधिकार नहीं तो और किसको होगा? ईश्वर ने मेरे और तुम्हारे सम्बन्ध के बीच यह अधिकार परिमित कर रक्खे हैं।"

"हाँ, एक दिन ऐसा था, पर अब नहीं; क्योंकि तुम उन अधिकारों का उल्लंघन करके उन्हें पाँव से ठुकरा कर चली गई हो। हृदय शीशे

के समान होता है; किसी ठेस से जब एक बार टूट गया तो फिर जुड़ना कठिन हो जाता है।"

हरिहर बाबू के इन व्यंग्यपूर्ण शब्दों ने सरयू के हृदय पर वज्राघात किया, उसके विदीर्ण हृदय की ज्वाला से द्रवित नयन अश्रुपात करने को विवश हो रहे थे। किन्तु आंसुओं के नमकीन घूँट पीकर उसने कहा, "ज़रा सी गलती के कारण मेरा यह सारा जीवन नष्ट न करो, स्वामी! तनिक स्थान दो . . . ."

इतना कहते कहते सरयू का कंठ रुँध गया। उसके कोमल स्वर से कातरता टपक रही थी, प्रत्येक शब्द मानों शोकबाण का प्रहार कर रहा था। यदि कठोर से कठोर हृदय होता तो भी एक बार वह सिहर उठता, किन्तु हरिहर बाबू ने दृढ़तापूर्वक कहा, "मैं दुनियादार हूँ। मुझे बिरादरी के नियम का पालन करना आवश्यक है। इसी कारण मैं अब तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकता।"

सरयू के वक्षस्थल में मानों कोई ज़ोर ज़ोर से चोटें लगाने लगा, रुधिर का स्रोत उबल उबल कर नेत्रों तक पहुँचने लगा। मर्माहत पक्षी की भांति तड़प कर बेचैनी से वह धरती पर गिर पड़ी। पल मात्र में सारी दुनिया उसकी दृष्टि में मानों काली हो गई।

बहुत देर गुज़र गई। शनैः शनैः सन्ध्या का शंख बज उठा। हरिहर बाबू ने कहा, "शाम हो गई, तुम्हें जहाँ जाना हो चली जाओ, यदि कोई आपत्ति आ पड़ेगी मैं यथायोग्य सहायता पहुँचाने का प्रयत्न करूँगा।

सरयूबाला ने पति की ओर बेलाग दृष्टि से देखा। उसके बाद वह उठ कर मशीन के पुर्जे की तरह चुपचाप घर से बाहर निकल गई।

३

उस समय हरिहर बाबू के घर में आरती हो रही थी। घण्टे बजने आरम्भ हुये। गाँव की स्त्रियाँ उत्सुक नेत्रों से गोपाल जी की पवित्र एवं मनमोहिनी मूर्ति की ओर श्रद्धापूर्वक एवं भावपूर्ण दृष्टि जमाये हुये थीं। सरयू को ख्याल आया—"एक दिन वह भी इसी प्रकार, इसी श्रद्धाभाव से सारे फूलों में गुलाब की भांति प्रसन्न और दीन होकर देवता के चरण कमलों में मस्तक टेकती थी, जिह्वा पर पति लिए मंगल कामनाओं से पूर्व प्रार्थनायें होती थीं। मुखमंडल नव विकसित पुष्प की भांति खिला रहता, इन्हीं सोहागिन स्त्रियों की भांति वह आशीर्वाद लेकर प्रसन्नचित घर जाती। और आज ?

आज उसे वहाँ ठहरने का साहस न हुआ। किसी तरह वहाँ से चल पड़ी। मार्ग में गांव की बहुयें अपनी सहेलियों के साथ हँसी खुशी से बातें करतीं, हाथ में आरती के थाल लिये चली जा रही थीं। इसी प्रकार बहुत दिनों तक इन बहुओं ने इसका भी साथ दिया था। जिस घर में आज उसे ठिकाना नहीं मिला, कुछ दिन पूर्व उसी के कुशल-मंगल के हेतु वह भी नदी में दीप-विसर्जन करने जाती थी। मगर आज इन स्त्रियों से मिलना जुलना तो दूर रहा उनके निकट जाने का भी साहस सरयू में न था।

हाय भगवान ! वह इस प्रकार कब तक निरुद्देश्य तथा आशाओं के वंचित जीवन की ठोकरें खाती फिरेगी। पृथ्वी का बोझ किस दिन हलका पड़ेगा। उसकी यह यात्रा कब तक समाप्त होगी। इसके बाद वह कौन सा सौभाग्यशाली दिवस होगा जब कि इस संसार को त्याग कर वह पति चरणों में सिर रख कर हँसते हँसते सती लोक को प्रस्थान करेगी। जिस प्रबल आकांक्षा को उसने सर्व प्रिय समझ कर बड़े चाव से हृदय में स्थान दिया था, आज वह उसी मार्ग की धूल के समान धूल में मिल गई। संसार ने उसके साथ समस्त सम्बन्ध तोड़ दिये—साहस और उत्साह करने पर भी वह पति के चरणों की धूलि न पा सकी।

कितने ही पीड़ित मनुष्य श्मशान से आ रहे थे। मुँह सूखा, चेहरा उदास, नेत्रों में दुःख भरा हुआ था। सरजू घबरा कर एक वृक्ष की आड़ में छुप गई, वह लोग दुःख व शोक की बातें करते अपने रास्ते चले गये। सरयू ने फिर अपने निराश जीवन की निरुद्देश्य यात्रा में दुबारा पदार्पण किया।

श्मशान में चिता जल रही थी। केवल अग्नि की ज्वाला की सुरसुराहट और नीलिमा युक्त लपटें उठ रही थीं। चारों ओर सन्नाटा छा रहा था। सरयू धीरे धीरे उसी स्थान पर आकर ठहरी। चिता की अग्नि से सुनसान नदी का तट प्रकाशमान हो गया था। उस अग्नि की आँच मानो सरयू के सीने तक पहुँच गई। साथ ही साथ हृदय पटल पर भविष्य जीवन की चित्र-रेखा दिव्य-रूप से प्रकट हो उठी। भयभीत होकर उसने देखा मानों सैकड़ों लाल लाल जिह्वायें निकाले चिता की

अग्नि उस से कह रही है, "यदि पवित्र होना चाहती है तो आजा, तेरे पाप ताप का मैल भस्म करके तुझे पवित्र कर दूँगी। तू सदा के लिये उज्जवल हो जायगी।" उस पुकार का स्वागत करने का साहस सरयू में न हो सका। वीणा की ध्वनि में मतवाली हिरनी की भाँति बह अग्नि की ओर बढ़ी और एक चीख मार कर पृथ्वी व आकाश को प्रकम्पित करती हुई नदी के अथाह जल में कूद पड़ी। उसके मुख से यह शब्द निकले—"नहीं जी नहीं, इस मृत्यु से तो मुझे तुम्हारे चरणों में स्थान न मिल सकेगा; न मिलेगा, कदापि न मिलेगा!"

४

भयावह रात्रि के सन्नाटे के उपरान्त सृष्टि फिर नई नवेली बहू की भाँति सलज्ज भाव से मुस्कराती हुई उतावली हो रही थी!

रात्रि के प्रथम स्वप्न के समान सरयूबाला की याद ने हरिहर बाबू की नींद में बाधा डाल दी। तप्त मस्तिष्क को तरावट पहुँचाने के लिये उन्होंने प्रत्येक प्रयत्न किया, किन्तु इसके फल-स्वरूप निष्फलता ही हाथ लगी। उनके नेत्रों में रह रह कर वही सुन्दर प्रार्थनापूर्ण मुख-मण्डल नाच उठता था। हृदय के अन्तस्तल में बैठा हुआ मानो कोई बराबर उनसे कह रहा था, "तूने ग़लती की; घोर ग़ल्ती की!"

शान्ति मिलना तो दूर रहा, मानो पृथ्वी, वायु, आकाश, सभी ओर से यह ही शब्द गूँज रहा था और उनके हृदय को व्याकुल किये देता था। किसी स्थान पर भी उन्हें चैन नहीं मिलता था।

प्रत्येक वस्तु जो उनकी दृष्टि में आती अथवा जिसको वे छूते, ऐसा प्रतीत होता मानो उनको धिक्कार रही है। सरयू की याद उनके हृदय में एक ऐसी चुटकी ले रही थी कि जिससे उनकी दशा पागलों की सी हुई जा रही थी। उनको यही विचार खाये जा रहा था कि अब सरयू से क्योंकर भेंट हो सकेगी ?

प्रगतिशील काल ने सृष्टि में परिवर्तन के निमित्त कौन सा समय नियुक्त किया है, इसको समझना मनुष्य-मात्र से लिये कठिन है। कीचड़ में कमल, मिट्टी में लाल, बिष में औषधि, अवगुण में गुण तथा बुराई में भलाई का गुप्त-रूप के विद्यमान रहना प्राकृतिक नियमानुसार अनिर्वार्य है। इसी प्रकार दुख में सुख की झलक भी लुप्त रहती है। हरिहर बाबू व्यथित चित्त व्याकुल हो कर अपने कमरे में इधर उधर घूमते फिरते इसी विचार में लीन थे, कि सरयू से क्योंकर भेंट हो सकेगी। इसी बीच अकस्मात् उनकी दृष्टि मेज पर रक्खे हुये दैनिक समाचारपत्र पर पड़ी। उसके प्रथम पृष्ठ पर ही मोटे मोटे अक्षरों में छपे हुए एक विशेष शीर्षक ने उन्हें चौंका दिया।

लपक कर समाचार पत्र को उठाते ही हरिहर बाबू ने क्षण मात्र में आदि से अन्त तक उस घटना का वृत्तान्त पढ डाला। उसमें लिखा था, "आज प्रातःकाल नदी के परिवर्त्ती जल में उतराती हुई एक लाश पुलिस के हाथ लगी। वह सरकारी अस्पताल में जाँच के लिये लाई गई, डाक्टर ने उसके जीवित हो जाने की कुछ आशा जान करके दो इनजेक्शन लगाये जिसके फलस्वरूप उस मृतप्राय देह में चैतन्य

का संचार हो उठा। यद्यपि उसकी अवस्था शोचनीय है तो भी उसके चंगे हो जाने की बहुत कुछ सम्भावना है। स्त्री की आयु लगभग २२ वर्ष की होगी! शरीर सुडौल साधारण डीलडौल, सुन्दर लावाण्डमय गोला मुख मण्डल है। गले में एक लाकिट है। पुलिस इसका पता लगा रही है कि वह किस कुल की नव-बधू है।"

घटना का हाल पढ कर हरिहर बाबू अवसन्न रह गये। सिर में चक्कर मस्तिष्क में पीडा, शरीर मे पसीना, हृदय में प्रबल स्पन्दन, करों में कम्पन तथा नेत्रों मे अश्रु, सब के सब एक साथ उनपर टूट पडे। इस विकलता के कठोर आक्रमण ने उन्हें पास ही रक्खी हुई कुर्सी पर गिरा दिया। मस्तक को हथेली पर टेकते हुये वह सोचने लगे, 'हे परमात्मा! यह कैसी विपत्ति। हो न हो यह स्त्री अवश्य ही मेरी सरजू है। मेरे कुत्सित व्यवहार से दुखित और अपने को निःसहाय जानकर इसने आत्म-हत्या करने के हेतु नदी मे डूबने की चेष्टा की होगी। सच है, जब संसार में दुखित हृदय को कहीं सहारा मिलने की आशा जाती रहती है तो उसे केवल मृत्यु की प्रतीक्षा मे ही आनन्द का अनुभव और शान्ति की प्रतीति होती है। सरयू की चेष्टा भी इसी तरह की थी। किन्तु प्रभो! तुम्हारी लीला बडी विचित्र है! तुम सचमुच बडे दयालु हो गोपाल! अपने भक्तों को दुखित अथवा व्यथित देख कर तुमको चैन नहीं मिलता। भगवान! क्या मेरे हृदय की ज्वाला को शान्त करने और मेरे मन की व्याधि हर लेने के लिये ही तो कहीं पुलिस रूप में तुमने मेरी सरजू को नहीं बचाया!' यह अंतिम

शब्द मुख से करते हुये हरिहर बाबू कुरसी से उठ कर सामने ही रक्खी हुई सुन्दर जड़ाऊ चौकी पर जगमगाते हुये सिंहासन पर विराजमान गोपाल जी की दिव्य मनमोहिनी मूर्ति के निकट जा बैठे। उनका मस्तक चौकी पर जा टिका, नेत्रों से अश्रु प्रवाह वर्षाऋतु की उमड़ती हुई नदी के समान पूर्ण वेग से प्रकट हो उठा। वह सिसक सिसक के बालकों के समान रोने लगे, मानों वह किसी अपहरित खिलौने की भीख माँग रहे हों। उनके मुख से ये शब्द निकल ही पड़े :

"भगवान् ! मेरे इस घोर पाप का क्या प्रायश्चित होगा ? मेरे कारण ही तो तुमको कष्ट हुआ, क्या इसके प्रति तुम मुझे क्षमा प्रदान करोगे ? क्या सरजू मेरे कठोर व्यवहार को भूल कर मेरे प्रति प्रेम प्रकट कर सकेगी ? अब मैं उसे अपने गृह मन्दिर में लाकर अपने मन-मन्दिर की रानी फिर से बनाने में समर्थ हो सकूँगा ? गोपाल बोलो तुम चुप क्यों हो? अब मेरी मानसिक व्यथा जान कर तुम मेरी इतनी सहायता कर सको हो तो क्या मेरी इस समय की आतुरता दूर न करोगे ? नहीं, नहीं ! तुम इतने कठोर नहीं बनोगे को अन्यथा क्या दयालुता की मर्यादा को भङ्ग करोगे। मेरे गोपाल ! मेरे भगवान. . . . . " कहते कहते उनका कंठ रुँध गया, मुख से प्रयत्न करने पर भी कोई शब्द निकल न पाता था। वह टकटकी लगाये गोपाल जी की प्रतिमा निहार रहे थे ऐसा प्रतीत हुआ मानों उस प्रतिमा से सुधा-वृष्टि हो रही है। हरिहर बाबू के नेत्रों से अश्रु

प्रवाह अब भी उसी प्रकार जारी था। अश्रु-जल से दोनों कपोल तथा वक्षस्थल भीग उठे।

५

अकस्मात् कमरे का द्वार खटका। नौकर ने दरवाजा खोल कर प्रवेश करते हुए कहा, "बाबू जी! पुलिस . . . ." हरिहर बाबू चौंक पड़े। उनका ध्यान टूट गया, पुलिस का नाम सुनते ही सहम गये, अंग प्रति अंग के रोंगटे खड़े हो गये, चेहरे पर क्षण भर पूर्व जो शोक और ग्लानि के बादल छाये हुये थे वे अश्रुजल के रूप में वर्षा कर के लुप्त हो गये और उनके स्थान पर भय की भयङ्कर घटा घिर आई। अपने बड़े बड़े नेत्रों को फैला कर पागलों की भांति वह लपकते हुये कमरे से बाहर आये, देखा—पुलिस सरयू के पीड़ित शरीर को डोले में लिटाये हुये द्वार पर खड़ी है। देखते ही चकित हो उठे!

सरयू अपने तृषित नेत्रों से स्वामी का मुख देखने की बाट जोह रही थी। उसका शरीर बिल्कुल क्षीण हो चुका था। स्वर शक्तिहीन था। मुखाकृति देखने से प्रत्यक्ष प्रतीत होता था कि वह थोड़ी ही देर की मेहमान है।

पल मारते हरिहर बाबू का भयभीत हृदय विषाद् और दुःख से भर आया। सरयू की शोचनीय दशा देखते ही उनका सन्देह जो दिल में प्रज्वलित ज्वाला के समान अब भी लपटें उठा रहा था, अतीत के सुख से भरपूर पर्दे में न जाने कहाँ विलीन हो गया, विह्वल होकर बोल उठे, "सरजू! सरजू!!"

पल भर तक हरिहर बाबू न जाने क्या सोचते रहे। तत्पश्चात् नौकर की सहायता से सरयूबाला के शिथिल शरीर को सावधानी से उठा कर अपने बिस्तर पर लाये, उसके मैले वस्त्रों को बदला। जाकेट उतारते ही उन्होंने देखा—सीने पर अत्यन्त सुरक्षित रूप से पड़ा हुआ है उन्हीं की तस्वीर का लाकेट! कई वर्ष पूर्व प्रथममिलन के दिन यह लाकेट उन्होंने सरयू को उपहारस्वरूप भेंट किया था।

स्वामी की इस सेवा-शुश्रूषा से सरयू का हृदय पिघल उठा। उनके मुख से विह्वलतापूर्वक उच्चारित, "सरजू! सरजू!!" शब्द अब भी मस्तिष्क में घूम रहे थे, मानों उन शब्दों ने सरयू की हृदय बीणा के तारों में झनझनाहट उत्पन्न कर के उसकी सारी शिथिलता को अपहरित कर लिया हो। प्रसन्नता से उसके मुख पर मुहर लग गई, सारी उमंगों तथा अभिलाषाओं का श्रोत उमड़ कर नयनों के कोनों में एकत्रित हो गया। अश्रु-प्रवाह किसी भांति भी न रुक सका। कपोलों से होते हुये अश्रुजल तृषित हृदय की प्यास बुझाने की चेष्टा करने लगे।

हरिहर बाबू के धैर्य का बाँध एकाएक टूट गया। बालकों की भांति बिलख बिलख कर रोते हुए पत्नी के सीने पर लेट गये और अविरल चुम्बन की मुहरों से उन्होंने अपने कर्तव्य एवं अधिकार का पूर्ण परिचय दिया।

देखते देखते सरयू के समस्त शरीर के रोयें खड़े हो गये। सारी ज्वाला, सारी उमंगे, पीड़ा व प्रेम की नदी में लीन हो गई। वह

अपनी असहनीय चोट के कारण कल्पना जगत् में विहार करने लगी। उसके नेत्र बन्द हो गये।

कम्पित स्वर में हरिहर बाबू ने कहा, "सरजू! केवल मेरे कारण ही तुम्हारी यह दशा हुई। मैं इसे किसी भी भांति नहीं भूल सकता। बताओ! तुम मेरी गलतियों को भूल सकने की चेष्टा करोगी।"

कात काट कर सरयू ने कहा, "जिसको मन से, ज्ञान से कसूर कह कर स्वीकार नहीं कर सकती, उसे क्यों कर भूलूँगी। ऐसी पवित्र और तेज पुञ्ज प्रतिमा को पति के रूप में पाकर उसके हृदय को कष्ट पहुँचाया इस पाप का क्या प्रायश्चित है? तिस पर भी तुमने दया करके चरणों में स्थान दिया, यह क्या मेरा कम सौभाग्य है? दया व क्षमा की भीख मिलने पर भी कुछ कहने की मेरी आकांक्षा नहीं किन्तु आज इस इच्छा और लालच को किसी प्रकार भी संवरण नहीं कर सकती। बोलो प्रीतम! तुमने मुझे क्षमा किया?"

हरिहर बाबू ने भर्राते हुये स्वर में कहा, "सामाजिक जीवन के शिष्टाचार और समाज के नियमों ने मुझे जकड़ कर विवश कर रक्खा था। इसी कारण मुँह खोलने का साहस न कर सका मैं इस बात को बिलकुल भूल गया था कि संसार स्वार्थमय है। इस संसार में ढूँढ़ने से भी कोई ऐसा मनुष्य न मिलेगा, जो गलती अथवा भूल न करता हो। और यदि मनुष्य, मनुष्य की गलतियों अथवा भूलों को क्षमा न करें तो परमात्मा के सामने वह किस मुँह से भिक्षुक बन कर खड़ा होगा?

सरयू के सारे शरीर पर शान्ति और हृदय में स्थिरता के चिह्न प्रकट हो गये। धीरे धीरे उसने सरक कर पति की गोद में अपना शीश रख दिया। तत्पश्चात् अत्यन्त श्रद्धाभाव से पति के चरणों की रज अपने मस्तष्क में लगाई। उसके जीवन-दीप के अन्तिम प्रकाश की क्षीण रश्मियाँ टूटी साँसों के रूप में झलक रहीं थी।

इस अभिलाषा को लेकर वह किस प्रकार जीवन के पार यात्रा करेगी? क्या अन्तर की न बुझने वाली अग्नि उसे पवित्र कर देगी? क्या सती लोक का द्वार उसके लिये खुल जायगा?— इसे कौन कह सकता है?

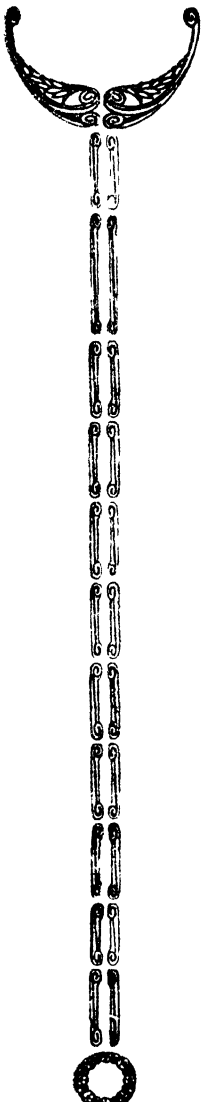

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित पुस्तकें

उच्चकोटि की पुस्तकें मनुष्य को उच्च बनाती हैं; वे हमारा मनोरंजन और पथ प्रदर्शन करती हैं। इसलिये उन्हें सदैव अपने निकट रखिये।

पुस्तकों का प्रकाशन हम इसी उद्देश्य से करते हैं। फलतः आप इन पुस्तकों से पूरा लाभ उठा सकते हैं।

लगन

उर्दू के सुप्रसिद्ध लेखक मुंशी गौरीशंकर लाल, 'अख्तर', की रोमांस और जीवन से भरी हुई कहानियों का यह संग्रह हिन्दी के पाठकों के लिये सर्वथा नई वस्तु है। सुन्दर गेट-अप, बढ़िया, छपाई और मोटे कागज पर छपी इस पुस्तक का मूल्य केवल १।)

छप रहा है ! छप रहा है ! छप रहा है !

रोमाँ-रोलाँ के सर्वोत्कृष्ट उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर

फ्रांस के अमर कलाकार, नोबुल पुरस्कार विजेता रोमाँ-रोलाँ उन साहित्य महारथियों में हैं जिनकी कला-कृतियाँ न केवल फ्रेंच-साहित्य को गौरवान्वित करने वाली हैं, प्रत्युत विश्व-साहित्य में भी अत्यधिक आदर एवं सम्मान का स्थान प्राप्त कर चुकी हैं। उनके सर्वोत्कृष्ट उपन्यास 'जान क्रिस्टाफ़र' का हिन्दी रूपान्तर बड़ी ही सज-धज के साथ प्रकाशित हो रहा है। प्रतीक्षा कीजिए !

इंदीवर

सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक मोपासां की सुन्दर कहानियों का यह संग्रह अपने ढङ्ग का अनोखा है। एक एक कहानी आपके अन्तस्तल में एक विचित्र अनुभूति उत्पन्न करके आपको मानव के विचित्र मनस्तलों का परिचय करायेगी।

शीघ्र
छपेंगी

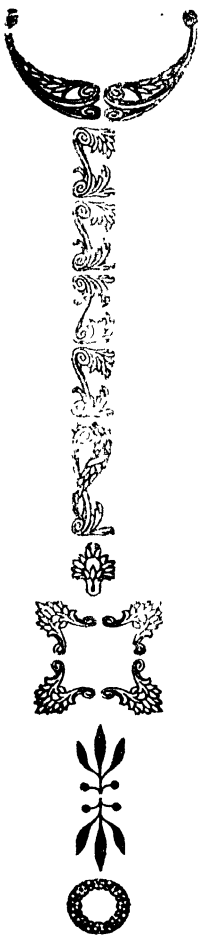

संसार के महाकाव्य

तीन खण्ड, सुन्दर नयनाभिराम छपाई और मोटा काग़ज; बढ़िया गेट-अप।

संसार के महाकाव्यों की संक्षिप्त कहानियाँ सुललित भाषा में पढ़िये। प्रत्येक कहानी जीवन की एक अध्याय है।

विश्व-गल्प-साहित्य संग्रह

तीन खण्ड; सुन्दर गेट-अप, और बढ़िया छपाई।

जीवन की समस्यायें, प्रेम की रोमांचकता; चन्द क्षणों की रंगीनियों से परिचय प्राप्त करने लिये अँगरेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, इटैलियन, स्विस, नार्वेजियन, स्वेडिश, ग्रीक, रूसी, जापानी, चीनी, भारतीय, अफ्रीकन कहानियाँ पढ़िये।

उर्दू में प्रकाशित पुस्तकें

फौव्वारा

मुन्शी गौरीशंकर लाल, "अख्तर", की अमर लेखनी का चमत्कार, जो साहित्य में तहलका मचा रही है।

आबशार

मुन्शी जी का दूसरा अछूता नमूना, जिसकी उर्दू साहित्य वर्षों से प्रतीक्षा कर रहा था। मोटा कागज़; बढ़िया छपाई।

सरमाया

मुन्शी जी का तीसरी कला-कृति जो व्यथित हृदयों को नैसर्गिक सुख और शान्ति की अनुभूति कराने वाली होगी।

उर्दू में शीघ्र प्रकाशित होंगी

(१) "आजमाइशे मासूम"—(एक अँग्रेजी उपन्यास का भावपूर्ण अनुवाद) अनुवादक, श्रीयुत एम० एल० पांडे।

(२) "मुर्त्यश ज़ज़्बात"—पांडे जी की दूसरी कृति, जिसके एक एक शब्द आपकी भावनाओं में जागृति का संचार कर देंगे।

(३) "पुर इसरार वसीयत"—रहस्य पूर्ण रोमांच से ओत प्रोत, प्रेम की मधुर स्मृति और छिपे हुए खज़ाने का भेद आप पढ़ कर चकित रह जायँगे।

मुद्रक—कला प्रेस, प्रयाग।